॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

परमप्रभु अपने ही महुँ पायो

[परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके प्रवचनोंका सार-संग्रह]

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

'हे प्रभो! आप ही मेरी माता हो, आप ही पिता हो, आप ही बन्धु हो, आप ही सखा हो, आप ही विद्या हो, आप ही धन हो। हे देवदेव! मेरे सब कुछ आप ही हो।'

संकलन तथा सम्पादन—
राजेन्द्र कुमार धवन

गीता प्रकाशन,
कार्यालय—माया बाजार, पश्चिमी फाटक,
गोरखपुर—273005 (उ०प्र०)
फोन—09389593845; 07668312429
e-mail: radhagovind10@gmail.com

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

नम्र निवेदन

वर्तमान युगके अद्वितीय महापुरुष परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजका इस भारतभूमिमें आगमन ही मानवमात्रके कल्याणके लिये हुआ था। यह विश्वहितकारी भाव उनके प्रवचनोंमें अनेक बार प्रकट हुआ है; जैसे—

'मेरा एक ही विषय है कि जीवका कल्याण कैसे हो। इसीसे सम्बन्धित बात ही मैं कहता हूँ।' (८.१.१९९९, प्रातः ९, सूरत)

'आप तत्त्वज्ञ हो जायँ, आप जीवन्मुक्त हो जायँ, आप भगवद्भक्त हो जायँ, आप भगवत्प्रेमी हो जायँ, यह है मेरा विषय।' (२६.४.२००१, सायं ४, ऋषिकेश)

जबतक परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराज इस धरातलपर रहे, तबतक वे अपने प्रवचनों तथा पुस्तकोंके माध्यमसे कल्याणकी नयी-नयी युक्तियोंको प्रकाशित करते रहे, जिनसे इस घोर कलियुगमें भी मानवमात्र सुगमतापूर्वक अपना कल्याण कर सके। इसी कारण उनकी पुस्तकोंमें एक विलक्षण शक्ति है, जो पढ़नेवालेके हृदयमें प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्षरूपसे अमिट प्रभाव डालती है!

प्रस्तुत पुस्तक **'परमप्रभु अपने ही महुँ पायो'** में परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराज द्वारा जनवरी २००३ से लेकर दिसम्बर २००३ तक दिये गये प्रवचनोंका सार-संग्रह दिया जा रहा है। ये सभी प्रवचन गीताभवन, स्वर्गाश्रम, ऋषिकेशमें दिये गये थे। इन प्रवचनोंमें प्रश्नोत्तरोंकी मुख्यता है; क्योंकि सायंकालीन सत्संगमें परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराज प्रायः श्रोताओं द्वारा किये गये प्रश्नोंके उत्तर दिया करते थे। प्रवचन होनेसे इनमें पुनरुक्तियाँ होनी स्वाभाविक हैं। उन पुनरुक्तियोंको साधकके लिये लाभप्रद समझते हुए हटाया नहीं गया है।

जिज्ञासु पाठकोंको श्रीस्वामीजी महाराजकी अन्य पुस्तकोंका भी अध्ययन करना चाहिये। कारण कि एक ही पुस्तकमें, एक ही जगह सभी बातें एक साथ नहीं आ सकतीं।

किसी भी देश, जाति, धर्म, सम्प्रदाय आदिका कोई भी जिज्ञासु यदि प्रस्तुत पुस्तकका मनोयोगपूर्वक अध्ययन करेगा तो उसके जीवनमें अवश्य उत्थान होगा, इसमें सन्देह नहीं। प्रत्येक साधकसे मेरी विनम्र प्रार्थना है कि कम-से-कम एक बार तो इस पुस्तकको अवश्य ही पढ़े।

योगिनी एकादशी
वि० सं० २०७६ (सन् २०१९)

निवेदक—
राजेन्द्र कुमार धवन

परम प्रभु अपने ही महुँ पायो।
जुग जुग केरी मेटी कलपना, सतगुरु भेद बतायो॥
ज्यों निज कंठ मणी भूषण कहुँ, जानत ताहि गमायो।
आन किसी ने देखि बतायो, मन को भरम मिटायो॥
ज्यों तिरिया सपने सुत खोयो, जानत जिय अकुलायो।
जागत ताहि पलँग पर पायो, कहुँ ना गयो नहिं आयो॥
मिरगन्ह पास बसे कस्तूरी, ढूँढ़त बन बन धायो।
निज नाभी की गंध न जानत, हारि थक्यो सकुचायो॥
कहत कबीर भई गति सोई, ज्यों गूँगो गुड़ खायो।
ताको स्वाद कहे कहु कैसो, मन ही मन मुसकायो॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

परमप्रभु अपने ही महुँ पायो

मंगलाचरण

पराकृतनमद्बन्धं परं ब्रह्म नराकृति।
सौन्दर्यसारसर्वस्वं वन्दे नन्दात्मजं महः॥

'जिन्होंने नमस्कार करनेवालोंके भव-बन्धनको दूर कर दिया है और जो मनुष्यके आकारमें साक्षात् परब्रह्म हैं, उन सौन्दर्यके सारसर्वस्व नन्दनन्दनरूप दिव्य तेजकी मैं वन्दना करता हूँ।'

प्रपन्नपारिजाताय तोत्त्रवेत्रैकपाणये।
ज्ञानमुद्राय कृष्णाय गीतामृतदुहे नमः॥

'जो शरणागत भक्तोंको कल्पवृक्षके समान मनोवांछित फल देनेवाले हैं, जिनके एक हाथमें घोड़ोंकी लगाम और चाबुक है तथा दूसरा हाथ ज्ञानमुद्रासे सुशोभित है, ऐसे गीतारूपी अमृतको दुहनेवाले भगवान् श्रीकृष्णको मैं प्रणाम करता हूँ।'

वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम्।
देवकी परमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्॥

'जो वसुदेवजीके पुत्र, दिव्यरूपधारी, कंस एवं चाणूरका नाश करनेवाले और देवकीजीके लिये परम आनन्दस्वरूप हैं, उन जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णकी मैं वन्दना करता हूँ।'

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्
पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात्।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्
कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने॥

'वंशीसे सुशोभित हाथोंवाले, नवीन मेघके समान कान्तिवाले, पीताम्बरधारी, बिम्बफलके समान लाल होंठोंवाले, पूर्णचन्द्रके समान सुन्दर मुखवाले तथा कमलके समान नेत्रोंवाले श्रीकृष्णसे बढ़कर मैं कोई और तत्त्व नहीं जानता।'

हरिः ॐ नमोऽस्तु परमात्मने नमः।
श्रीगोविन्दाय नमो नमः।
श्रीगुरुचरणकमलेभ्यो नमः।
महात्मभ्यो नमः।
सर्वेभ्यो नमो नमः।

* * * * * * * * *

'सच्चिदानन्दघन परमात्माको और सन्त-महापुरुषोंको सादर अभिवादन कर आपलोगोंके समक्ष कुछ बातें कहनेके लिये एक चेष्टा कर रहा हूँ। हमारी बातोंमें अच्छी बातें मालूम दें, वे शास्त्रोंके सिद्धान्तकी, वेदोंकी, पुराणोंकी, स्मृतियोंकी, रामायण आदि ग्रन्थोंकी हैं; और त्रुटियाँ मालूम दें, वे मेरी व्यक्तिगत हैं। व्यक्तिगत बातोंकी तरफ ध्यान न देते हुए वास्तविक सिद्धान्तकी तरफ ध्यान देंगे, ऐसी प्रार्थना है।'

* * * * * * * * *

श्रोता—असाधनकी परिभाषा क्या है?

स्वामीजी—संसारमें आसक्ति हो, संसार प्रिय लगे—यह असाधन है। रुपये, भोग, मान-बड़ाई, आदर-सत्कार प्यारे लगें—यह सब असाधन है। रुपये इकट्ठे करना और भोग भोगना खास असाधन है।

*** *** ***

श्रोता—मैं सात-आठ घण्टे प्राणायाम करता हूँ और साथमें नामजप करता हूँ, तो क्या इससे मेरा कल्याण हो जायगा?

स्वामीजी—आपका निश्चय है तो हो जायगा, पर आपको सन्देह है तो कल्याणमें सन्देह है! एक बात बताता हूँ, आप ध्यान दो। कई बार बतायी है, फिर बताता हूँ। **क्रियासे भगवान् प्रसन्न नहीं होते।** क्रिया निरन्तर नहीं होती और उसमें थकावट होती है। भगवान् मेरे पिता हैं, मेरी माँ हैं, मेरे पुत्र हैं, मेरे भाई हैं, मेरे मित्र हैं, मेरे गुरु हैं, मेरे चेला हैं—इस प्रकार भगवान्‌से सम्बन्ध जोड़ो तो यह सम्बन्ध निरन्तर रहता है।

क्रियासे भगवत्प्राप्ति जल्दी नहीं होती, देरी लगती है। वास्तवमें भगवत्प्राप्ति क्रियासे नहीं होती, भावसे होती है। आप प्राणायाम, नामजप आदि करते हैं तो इसमें क्रियाकी मुख्यता है। मैं भगवान्‌का हूँ, मेरे भगवान् हैं—यह भाव हो तो फिर चाहे प्राणायाम करो, चाहे नामजप करो, चाहे कीर्तन करो, चाहे भगवान्‌की लीलाके पद गाओ। क्रिया खण्डित होती है, पर सम्बन्ध खण्डित नहीं होता। क्रियामें थकावट होती है, पर सम्बन्धमें थकावट नहीं होती। माँको अपना माननेमें क्या परिश्रम होता है? क्या पसीना आता है? माँको आठ पहर भी याद मत करो तो भी माँका सम्बन्ध अखण्ड रहता है। इसलिये भगवान्‌के साथ अपनापन रखो कि भगवान् मेरे हैं, मैं भगवान्‌का हूँ।

जैसे बिना इच्छाके, बिना जाने भी अग्निका स्पर्श हो जाय तो वह जलायेगी ही, ऐसे ही किसी भी प्रकारसे भगवान्‌के साथ सम्बन्ध हो जाय तो वह पापोंको जलायेगा ही। अतः आप किसी भी भावसे भगवान्‌के साथ सम्बन्ध जोड़ लो—***'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई'***।

*** *** ***

श्रोता—भगवान्‌में अपनेको लीन कर दें—इसका उपाय बताइये।

स्वामीजी—हरदम भगवान्‌को याद रखो। लीन कर देनेमें केवल भगवान्‌की स्मृति और भगवान्‌की कृपा ही कारण है। लीन करना सर्वथा हाथकी बात नहीं है। जैसे मीराबाईका शरीर भी नहीं मिला, भगवान्‌में लीन हो गया, ऐसा बहुत ही कम सन्तोंका हुआ है। मनसे भगवान्‌में लीन हो सकते हैं कि मैं कुछ नहीं हूँ, मेरी जगह केवल भगवान् ही हैं।

भगवान्‌में गाढ़ प्रीति हो। शरीरके जीनेकी भी इच्छा न हो। संसारकी अनुकूलताकी भी इच्छा बिल्कुल न हो। संसारकी तरफ आकर्षण भोग है, योग नहीं है। इसलिये भगवान्‌में प्रियता और संसारमें समता होनी चाहिये। गोस्वामीजीने कहा है—

तुलसी ममता राम सों समता सब संसार।
राग न रोष न दोष दुख दास भए भव पार॥

(दोहावली ९४)

संसारमें किसीसे भी मोह न रहे। संसारका मोह ही खास बाधा है। स्वप्नमें भी किसीसे मोह न रहे—ऐसा तो हो सकता है, पर शरीर भी लीन हो जाय—ऐसा देखनेमें बहुत कम आता है।

*** *** ***

श्रोता—वस्तुको अपनी नहीं मानें और काममें लें, और दूसरी बात यह है कि वस्तुको अपने पास रखें ही नहीं—दोनोंमेंसे कौन-सी बात ठीक है?

स्वामीजी—वस्तु अपने पास रखें चाहे न रखें, खास बात यह है कि वस्तुमें मोह नहीं रखें। वस्तु बाधक नहीं है, उसमें प्रियता बाधक है। वस्तुके बिना हमारा काम कैसे चलेगा—यह भाव बाँधनेवाला है।

वस्तु और व्यक्ति ईश्वर-सृष्टि है और उनमें मोह करना मनुष्य-सृष्टि है। मनुष्यकी सृष्टि मनुष्यको बाँधती है। भगवान्‌की सृष्टि मनुष्यको नहीं बाँधती। भगवान्‌की सृष्टि तो उद्धार करनेवाली होती है। अपना जो मोह, अज्ञान है, वह बाँधता है। अज्ञान मिटानेकी जिम्मेवारी आपपर है; क्योंकि आपने मोह किया है। भगवान्‌ने मोह नहीं दिया है। इसलिये जीवकी सृष्टि ही जीवके लिये बाधक होती है।

लोग कहते हैं कि भगवान्‌की मायाने हमें मोहित कर दिया! वास्तवमें भगवान्‌की माया मोहित नहीं करती, प्रत्युत दुष्टोंकी माया मोहित करती है। जब मनुष्य भगवान्‌की वस्तुको अपनी मान लेता है, तब बँधता है। राजकीय वस्तुको कोई अपनी मान लेता है, उसको दण्ड मिलता है। सब वस्तुओंको भगवान्‌की मानो तो कभी मोह होगा ही नहीं।

अपने पास वस्तुएँ जितनी ज्यादा रखोगे, उतनी आफत आयेगी! जितनी कम वस्तुएँ रखोगे, उतनी शान्ति रहेगी।

कई आदमियोंका ऐसा भाव होता है कि कुछ रुपये बैंकमें जमा कर लें। उसका ब्याज आता रहेगा। फिर भजन करेंगे। वे भजन नहीं कर सकते। उनका रुपयोंमें मोह रहेगा। यह भजनका तरीका नहीं है।

गिरह गाँठ नहिं बाँधते, जब देवे तब खाहिं।
नारायन पाछे फिरें, मत भूखे रह जाहिं॥

भक्तकी चिन्ता भगवान् करते हैं।

श्रोता—अगर हम रुपयोंकी व्यवस्था करके उसके ब्याजसे काम चलायें और भजन करें तो इसमें क्या बाधा है?

स्वामीजी—भीतरमें रुपयोंका जो सहारा है, वह बाधक है। रुपयोंका सहारा होनेसे भगवान्‌के सहारेमें बाधा लगती है। भगवान्‌में अनन्यभाव नहीं होता। लाखों-करोड़ों रुपये चले जायँ तो कोई असर न पड़े, और लाखों-करोड़ों रुपये आ जायँ तो कोई असर न पड़े, फिर रुपये बाधक नहीं हैं। रुपयोंका सहारा नहीं होना चाहिये। सहारा केवल भगवान्‌का होना चाहिये।

क्रिया और पदार्थसे अपना कल्याण नहीं होता। ये दोनों केवल दूसरोंके लिये हैं, अपने लिये नहीं।

श्रोता—अगर अभी किसीके मनमें आ जाय कि सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका)-से यह बात पूछनी है तो कैसे पूछे?

स्वामीजी—मनमें ज्यादा आ जाय तो मनमें स्फुरणा हो जायगी। परन्तु परीक्षा करनेके लिये अथवा बनावटी बात पूछे तो नहीं होगी। बड़के नीचे मैंने सेठजीसे कहा कि आप इतनी गहरी बातें कहते हैं तो क्या हमलोगोंको इन बातोंका पात्र समझते हैं? सेठजी बोले कि मेरी बातें आकाशमें रहेंगी। जो अधिकारी होगा, उसको मिल जायँगी, चाहे मेरेको याद करे या न करे।

*** *** ***

श्रोता—आपने कहा कि दान देनेपर भी पैसेके प्रति महत्त्वबुद्धि रहती है। परन्तु जो लोग अभावग्रस्त हैं, उनको देनेपर वे खुश होते हैं, इसलिये हमें पैसे अच्छे लगते हैं कि जितने मिलें, उतने ही हम सेवामें लगा दें। यह भाव क्या ठीक नहीं है?

स्वामीजी—पैसोंका महत्त्व बाँधनेवाला है। बन्धन भीतरसे होता है, बाहरसे नहीं होता। बाहरसे पैसोंका त्याग करनेपर भी मनमें एक अभिमान आता है कि 'मैं पैसोंका त्यागी हूँ'। अभिमान तभी आता है, जब पैसोंका महत्त्व होता है, उनको बढ़िया समझता है। क्या मल-मूत्रका त्याग करनेका अभिमान आता है? पैसे तो मल-मूत्रसे भी खराब चीज है! पैसे बाँधते हैं, मल-मूत्र नहीं बाँधते।

भोगोंमें अथवा संग्रहमें महत्त्वबुद्धि ही बाँधनेवाली है। इनमें महत्त्वबुद्धि न हो तो फिर कोई बन्धन नहीं है। महत्त्वबुद्धि भगवान्‌में होनी चाहिये। रातमें सो रहे हैं और वर्षा आ गयी तो जूतोंकी चिन्ता होती है कि जूते बाहर रह गये! क्या उतनी चिन्ता भगवान्‌की होती है कि भगवान्‌को भूल गये? जूती-जितना भी भगवान्‌का महत्त्व नहीं है! मनमें भगवान्‌का महत्त्व हो तो सब काम ठीक हो जायगा। विचार करो कि आपके मनमें किसका महत्त्व ज्यादा है—भगवान्‌का या नाशवान् वस्तुका?

अपने हृदयमें भगवान्‌का महत्त्व बढ़ाओ। भगवान्‌से सम्बन्धित हरेक वस्तु (नाम, रूप, लीला आदि)-का महत्त्व हो। **भगवान्‌का जितना महत्त्व होगा, उतनी ही भक्ति होगी।**

*** *** ***

श्रोता—एक तरफ तो आप भगवान्‌को याद रखनेके लिये कहते हैं, और दूसरी तरफ आप चुप-साधन अर्थात् कुछ भी याद न करनेकी बात कहते हैं। इन दोनोंका क्या तात्पर्य है?

स्वामीजी—कुछ भी चिन्तन न करना एक साधन है। भगवान्‌को भी याद करनेसे चित्त, मन साथमें रहेगा, जिससे जड़ताका सम्बन्ध-विच्छेद नहीं होगा। परन्तु भगवान्‌को याद न करके 'भगवान् सब जगह हैं'—ऐसा मानकर चुप हो जायँ, कुछ भी चिन्तन न करें तो एकदम भगवान्‌के साथ ही सम्बन्ध है। इसमें केवल भगवान् ही रहेंगे, जड़ साथमें नहीं रहेगा।

जब परमात्मा सब जगह हैं तो आप जिस जगह हो, जहाँ आप अपनेको मानते हो कि 'मैं हूँ', वहाँ परमात्मा हैं कि नहीं? वहाँ भी परमात्मा पूरे-के-पूरे हैं। उनका चिन्तन करोगे तो चित्त साथमें रहेगा, बुद्धि साथमें रहेगी और चिन्तन न करनेसे केवल परमात्मा रहेंगे। जड़ता मिट जायगी, चेतन रह जायगा। यह खास बात है!

आप सब अभी भी भगवान्‌में ही हो। परन्तु आपने शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धिको साथमें रखा है। पहले यह मानो कि परमात्मा सब जगह हैं, फिर कुछ भी चिन्तन मत करो—'**आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्**' (गीता ६। २५)। अगर आलस्य आता हो, नींद आती हो तो कीर्तन करो, नामजप करो, पद गाओ, भक्त-चरित्र पढ़ो। उस समय यह साधन नहीं होगा।

श्रोता—इस चुप-साधनमें जो बाधा लग रही है, वह केवल एक ही लग रही है कि चिन्तन-रहित होते ही कोई-न-कोई संसारका चिन्तन आ जाता है, कोई बात याद आ जाती है!

स्वामीजी—नींद आयेगी तो दूसरा चिन्तन होनेसे ही आयेगी। कुछ-न-कुछ दूसरा चिन्तन हुए बिना नींदकी ताकत नहीं कि आ जाय। सत्संगके समय भी नींद तब आती है, जब सुननेके सिवाय दूसरी बात मनमें आती है। दूसरी बात मनमें आनेके बाद नींद आती है। कारण कि सत्त्वगुण सीधे तमोगुणमें नहीं जायगा, बीचमें रजोगुण आयेगा।

श्रोता—ऐसी कोई विधि है, जिससे मन एकाग्र हो जाय?

स्वामीजी—चुप-साधनमें मनकी एकाग्रताकी जरूरत नहीं है। मनकी उपेक्षा कर दो। हम रास्तेपर चल रहे हैं तो रास्तेमें काठ पड़ा हो, पत्थर पड़ा हो, पशु खड़ा हो तो हमारा उससे क्या मतलब? उपेक्षा करनेसे मन अपने-आप ठीक हो जायगा। मनमें जो आ जाय, उससे न राग करो, न द्वेष करो। उसको न अच्छा समझो, न बुरा समझो। मनमें जो आता है, वह सत्य नहीं है और अपनेमें नहीं है—ये दो बातें मान लो।

वास्तवमें मन-बुद्धिका सम्बन्ध छूटनेसे ही असली साधन होगा। मन-बुद्धि साथमें रहनेसे असली साधन नहीं होगा.....नहीं होगा.....नहीं होगा!! साथमें प्रकृतिका, जड़ताका सम्बन्ध रहेगा। इसलिये अभ्याससे परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती। कारण कि अभ्यासमें मन-बुद्धिकी आवश्यकता होती है।

*** *** ***

श्रोता—वास्तविक भजन क्या है?

स्वामीजी—वास्तविक भजन है—अपने-आप भगवान्‌की याद आये, याद करनी नहीं पड़े। किसी भी तरहसे भगवान्‌का सेवन करना भजन है; जैसे—उनको याद रखना, उनका नाम लेना, उनके चरित्र सुनना, उनकी आज्ञाके अनुसार चलना, आदि। जैसे प्यासे आदमीको जलकी याद आती है, भूखे आदमीको अन्नकी याद आती है, ऐसे भगवान्‌की याद स्वतः-स्वाभाविक आनी चाहिये।

आज साधकोंकी दशा यह है कि भगवान्‌को याद करते हैं और संसारकी याद आती है! जो करते हैं, वह नकली होता है और जो आता है, वह असली होता है। इसलिये भगवान्‌की याद आनी चाहिये। भगवान् स्वतः मीठे लगने चाहिये। जैसे बेलका फल शाखाके साथ जुड़ा रहे तो अपने-आप पककर मीठा हो जाता है, ऐसे ही किसी तरहसे हमारा सम्बन्ध भगवान्‌के साथ जुड़ा रहे तो यह भजन है। भगवान् प्यारे लगें, मीठे लगें, उनकी चर्चा अच्छी लगे, उनकी लीला अच्छी लगे, उनके चरित्र अच्छे लगें, उनके पद अच्छे लगें, उनका नाम अच्छा लगे—यह सब भजन है। यह होगा भगवान्‌की कृपासे, पर लगन आपकी चाहिये। बढ़िया भोजन पुष्टि देता है, पर भूख अपनी चाहिये।

*** *** ***

भगवान्‌की स्मृति लोक और परलोक सब सुधारनेवाली है। जैसे प्यासे आदमीको जलको याद करना नहीं पड़ता, भूखेको अन्न याद करना नहीं पड़ता, प्रत्युत स्वतः याद आती है, ऐसे ही भगवान्‌की स्वतः-स्वाभाविक याद आनी चाहिये। स्वतः याद नहीं आये तो रोकर भगवान्‌से प्रार्थना करो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'; 'हे नाथ, ऐसी कृपा करो कि मैं आपको भूलूँ नहीं'। नामजप करो। नामजप भी वास्तवमें भगवान्‌का स्मरण करनेके लिये एक साधन है। अन्न-जलकी आवश्यकता तो केवल शरीरके लिये है, पर भगवान्‌की आवश्यकता अपने खुदके लिये है।

जैसे किसी आदमीको चलते-चलते दस हजार रुपयोंके नोट मिल गये और वह चुपचाप यहाँ सत्संगमें बैठा है; परन्तु उसको उन रुपयोंकी बार-बार याद आती है कि आज इतने रुपये मिल गये! कारण कि रुपये अच्छे लगते हैं। इसी तरह भगवान् अच्छे लगने चाहिये। बार-बार स्वतः भगवान्‌की याद आनी चाहिये। भगवान्‌को याद करते-करते ऐसी स्थिति होती है कि अपने-आप याद आने लगती है। **जब भगवान्‌की याद अपने-आप आने लगती है, तब भजन शुरू होता है।**

श्रोता—भगवान्‌की याद अपने-आप कैसे आये?

स्वामीजी—याद करनेसे याद आयेगी। भगवान्‌को याद करते-करते याद आने लगेगी। करना, होना और है—ये तीन हैं। पहले याद 'करना' होता है, फिर करना 'होने' में बदल जाता है अर्थात् स्वतः

याद आने लगती है। फिर होना भी न रहकर 'है' (एकमात्र भगवान्) रह जाता है। सब कुछ भगवान् ही हैं, फिर याद क्या करें?

मैं तो यह समझता हूँ कि हरेक प्राणीको भगवान्की याद अपने-आप आती है। आप ख्याल नहीं करते! वह बहुत बढ़िया मौका है, जो कभी-कभी आता है। कभी अचानक अपने-आप भगवान्की याद आ जाय तो समझे कि भगवान् मुझे याद कर रहे हैं। उस समय सब काम छोड़कर विशेषतासे भगवान्के भजनमें लग जाना चाहिये—'**कोटिं त्यक्त्वा हरिं स्मरेत्**'।

एक बात और है। आप विचार कर लो कि अब भगवान्को याद करना ही नहीं है तो भगवान्की याद स्वतः आयेगी। भगवान्की याद स्वतः आनेकी यह भी एक अटकल है!

*** *** ***

श्रोता—आप कहते हैं कि भगवान्में लग जाओ तो सब अच्छा-ही-अच्छा होगा, पर भगवान्में लगनेसे हमारेपर तो दुःख-ही-दुःख आ रहे हैं, अच्छा तो कुछ होता नहीं!

स्वामीजी—दुःख आ रहे हैं तो बहुत ठीक हो रहा है! पुराने पाप कट रहे हैं, आपको पता नहीं है! संसारमें दुःख बहुत बढ़िया चीज है! सुख तो डुबोनेवाला है! **जिसको भगवान्के भजनसे सुख चाहिये, वह भगवान्का भक्त नहीं है, प्रत्युत सुखका भक्त है।** सुखके भक्त तो गधे-कुत्ते भी होते हैं। दुःख आता है तो भगवान्की विशेष कृपा है। भागवतमें भगवान् कहते हैं—

यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः।
ततोऽधनं त्यजन्त्यस्य स्वजना दुःखदुःखितम्॥
[करोमि बन्धुविच्छेदं स तु दुःखेन जीवति॥]

(श्रीमद्भा० १०। ८८। ८)

'जिसपर मैं कृपा करता हूँ, उसका सब धन धीरे-धीरे छीन लेता हूँ। जब वह निर्धन हो जाता है, तब उसके सगे-सम्बन्धी उसके दुःखाकुल चित्तकी परवा न करके उसे छोड़ देते हैं।'

जो दुःखमें भी भगवान्को नहीं छोड़ता, उसके भगवान् दासके भी दास हो जाते हैं!

जे करे आमार आश, तार करि सर्वनाश।
तबू जे ना छाड़े आश, तारे करि दासानुदास॥

सुखका प्रेमी भगवान्का भक्त नहीं होता। वह सुख चाहता है, भगवान्को थोड़े ही चाहता है! सुख चाहनेवालेको भगवान् कैसे मिलेंगे? उसको तो दुःख मिलेगा। भगवान्की प्राप्तिमें सुखकी इच्छा बड़ी भारी बाधा है।

सुख के माथे सिल पड़ै, नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुःख की, पल पल नाम जपाय॥

भरतजी प्रयागराजसे प्रार्थना करते हैं—

जानहुँ राम कुटिल करि मोही। लोग कहउ गुर साहिब द्रोही॥
सीता राम चरन रति मोरें। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें॥

(मानस, अयोध्या० २०५। १)

'स्वयं रामजी भी भले ही मुझे कुटिल समझें और लोग भले ही मुझे गुरुद्रोही तथा स्वामिद्रोही कहें, पर आपकी कृपासे सीतारामजीके चरणोंमें मेरा प्रेम दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही रहे।'

यह भक्तोंकी बात है! सुख मिले या दुःख मिले, आदर मिले या निरादर मिले, निन्दा हो या प्रशंसा हो, लोग अच्छा कहें या मन्दा कहें, उससे हमारा क्या मतलब है! हमारा मतलब तो भगवान्‌से है। भक्त न सुख देखता है, न दुःख देखता है। वह तो एक भगवान्‌को देखता है।

सुख भोगनेसे पुण्य नष्ट होते हैं और दुःख भोगनेसे पाप नष्ट होते हैं। पुण्य नष्ट होने चाहिये कि पाप नष्ट होने चाहिये, बताओ?

*** *** ***

श्रोता—मोह और प्रेममें क्या फर्क है?

स्वामीजी—बड़ा भारी फर्क है! मोह पतन करनेवाला और प्रेम उत्थान करनेवाला होता है। मोहमें लेना-ही-लेना होता है और प्रेममें देना-ही-देना होता है। शरीरादि पदार्थ और क्रियामें जो खिंचाव है, वह मोह है। भगवान्‌में जो खिंचाव है, वह प्रेम है। भोजन करना, जल पीना, सोना आदि क्रियाएँ शरीर-संसारके लिये करना मोह है। सम्पूर्ण क्रियाएँ भगवान्‌के लिये करना प्रेम है। बेटा, पोता आदि अच्छे लगें—यह मोह है। भगवान् अच्छे लगें—यह प्रेम है। जड़, नाशवान् वस्तु अच्छी लगे—यह मोह है। चेतन, अविनाशी वस्तु अच्छी लगे—यह प्रेम है। **प्रेम तो सदा रहेगा, पर मोह दुःखमें परिणत हो जायगा।** संसारकी चीजें जितनी अच्छी लगती हैं, उतना ही प्रेम घटता है।

सत्संगसे मोह छूटता है। असली सत्संग मिल जाय तो जरूर लाभ होता है। सत्संगकी बातोंको जितना गहरा समझेंगे, उतना ही ज्यादा लाभ होगा और भगवान्‌में प्रियता होगी।

श्रोता—हमारे मनमें यह भावना होती है कि हमारे बच्चे खुश रहें, तो इसको मोह कहा जायगा या प्रेम?

स्वामीजी—यह मोह ही है, प्रेम नहीं है। प्रेममें अपने और दूसरोंके बच्चोंमें फर्क नहीं होता। फर्क मोह होनेसे ही होता है, यह निश्चित बात है। सम्बन्धको लेकर जो प्रेम है, वह प्रेम नहीं है, प्रत्युत मोह है। आजकल लोग मोहको ही प्रेम कहते हैं!

*** *** ***

क्रिया और पदार्थ—ये दोनों प्रकृतिके हैं, परमात्माके हैं ही नहीं। भगवान् न क्रियासे मिलते हैं, न पदार्थसे मिलते हैं। भगवान् किसी वस्तुसे खरीदे नहीं जाते।

श्रोता—क्रिया और पदार्थ प्रकृतिके हैं—यह बात ठीक समझमें कैसे आये?

स्वामीजी—क्रियामात्र भगवान्‌के लिये करो। जप, ध्यान, कीर्तन, सत्संग, स्वाध्याय आदि क्रियात्मक साधन करनेसे यह बात समझमें आ जायगी। परमात्मप्राप्तिके लिये क्रिया और पदार्थकी जरूरत नहीं है, चुप हो जाओ; परन्तु यह शक्ति आयेगी जप, ध्यान, कीर्तन, सत्संग आदि क्रिया करनेसे। अतः यह बात समझनेके लिये जप करो, कीर्तन करो, **'मानवमात्रके कल्याणके लिये'** पुस्तक पढ़ो, सत्संग सुनो।

श्रोता—जप करनेकी कोई ऐसी सरल विधि बतायें कि जिससे यह बात हमारे अनुभवमें आ जाय।

स्वामीजी—ध्यान देकर सुनना! भगवान्‌का जो नाम आपको इष्ट हो, आपको प्यारा लगे, ठीक लगे, उसका जप इस विधिसे करो। जप न तो मालासे करो, न तो अँगुलियोंसे करो, प्रत्युत मनसे ही नाम लो और मनसे ही गिनो। इस तरह कम-से-कम एक माला (१०८ बार) जप करो। बीचमें मन दूसरी जगह चला जाय, दूसरी बात याद आ जाय तो वहीं जप छोड़ दो और पुनः आरम्भसे जप शुरू करो।

इसमें भले ही कितना समय लग जाय, एक माला पूरी कर लो। नाम और संख्याके सिवाय तीसरी बात मनमें नहीं आनी चाहिये। करके देखो, जरूर लाभ होगा!

*** *** ***

श्रोता—भगवत्प्राप्तिके लिये संन्यास लेना आवश्यक है क्या?

स्वामीजी—संन्यास मनसे लो। मनसे त्याग करो। शास्त्रमें ऊपरके त्याग (संन्यास)-का कलियुगमें निषेध किया गया है। **भीतरका त्याग ही वास्तवमें त्याग है, ऊपरका त्याग तो स्वाँग है।**

श्रोता—जाने-अनजाने कोई गलती हो जाय तो उसका प्रायश्चित्त कैसे हो?

स्वामीजी—जीव भूल बिना होता ही नहीं! भूलसे ही जीव हुआ है। भूल न होती तो जन्म कैसे होता? अतः कोई भूल हो गयी तो भगवान्‌को 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो, और आगे यह भूल दुबारा नहीं करूँगा.....नहीं करूँगा.....नहीं करूँगा—यह निश्चय कर लो तो वह भूल मिट जायगी!

पापमें आपके पास पहुँचनेकी ताकत नहीं है। वह मन-बुद्धितक ही पहुँचता है, उससे आगे नहीं। खराबी भी आती है तो मन-बुद्धिमें ही आती है, स्वरूपमें आती ही नहीं। गीतामें साफ लिखा है—**'शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते'** (गीता १३। ३१) 'यह शरीरमें रहता हुआ भी न करता है और न लिप्त होता है।' स्वरूप सदा शुद्ध रहता है। इसलिये जो गलती हो गयी, उसकी चिन्ता मत करो और पक्के रहो कि दुबारा वह गलती न हो तो सब दोष स्वतः नष्ट हो जायँगे। जो भूल हो गयी, उसको याद ही मत करो और सच्चे हृदयसे भगवान्‌में लग जाओ तो सब काम स्वतः ठीक हो जायगा। बड़े-बड़े पापी भी भगवान्‌के भक्त हो गये! आप हृदयसे भगवान्‌के हो जाओ, अपने-आपको भगवान्‌का मान लो तो सब पाप-ताप नष्ट हो जायँगे! **मात्र जीव भगवान्‌का अंश होनेके नाते सबसे पहले भगवान्‌के हैं, पीछे दूसरे (ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि) हैं।**

भगवान्‌को यादमात्र करनेसे शुद्धि हो जाती है!

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

(पद्मपुराण पाताल० ८०। ११; ब्रह्मवैवर्त० ब्रह्म० १७। १७; गरुड़पुराण, धर्म० ४७। ५२)

'मनुष्य अपवित्र हो या पवित्र हो अथवा किसी भी अवस्थामें क्यों न हो, जो कमलनयन भगवान् विष्णुका स्मरण करता है, वह बाहर-भीतर सब ओरसे पवित्र हो जाता है।'

भगवान्‌के स्मरणमें पवित्र करनेकी जो शक्ति है, वह दुनियाके किसी पुण्यमें है ही नहीं!

*** *** ***

श्रोता—जन्म-मरणके चक्रसे मुक्ति कैसे मिल सकती है?

स्वामीजी—भगवान्‌को 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो। यह बहुत बढ़िया उपाय है!

श्रोता—अक्रियतासे तत्त्वकी प्राप्ति होती है; परन्तु अक्रियताके लिये भी साधनकी आवश्यकता होती है या नहीं?

स्वामीजी—होती है। नामजप, कीर्तन, सत्संग, स्वाध्याय आदि करनेसे अक्रिय होनेकी शक्ति आती है। जो बातें पहले समझमें नहीं आती थीं, वे सत्संग करनेसे समझमें आने लगती हैं। यह एकदम प्रत्यक्ष बात है! पढ़ाईसे इतनी बातें समझमें नहीं आतीं, जितनी सत्संगसे समझमें आती हैं।

*** *** ***

दो साधु (गुरु और चेला) थे। वे शहरमें भिक्षा लेकर चले तो रास्तेमें एक अच्छा बगीचा देखा। दोपहरका समय था। वे उस बगीचेमें चले गये। उसमें राजाकी कोठी थी। राजा वहाँ थे नहीं। वे दोनों उस कोठीमें चले गये। एकमें गुरुजी बैठ गये, एकमें उनका चेला बैठ गया और भजन करने लगे। राजाके आनेका समय हो गया तो उनके आदमी वहाँ आये। उन्होंने देखा कि एक बाबाजी वहाँ बैठे हैं। उन्होंने पूछा कि आप कौन हैं? यहाँ क्यों बैठे हैं? वे साधु कुछ बोले नहीं, चुपचाप उठकर चल दिये। आगे चेलेको बैठा देखा तो उससे पूछा कि तू कौन है? यहाँ कैसे बैठा है? वह बोला कि मैं साधु हूँ। राजाके आदमीने उसको थप्पड़ लगाया कि यह क्या साधुओंका काम है कि दूसरेके मकानमें अधिकार कर ले? बाहर आकर गुरु-चेला दोनों मिले तो चेलेने बताया कि मेरेको मार पड़ी। गुरुजी बोले कि मार पड़ी है तो कुछ बने होगे! चेलेने कहा कि मैं बना तो कुछ नहीं। गुरुजी बोले कि कुछ बने बिना मार पड़ती नहीं। मैं भी वहाँ बैठा था। मेरेसे पूछा तो मैं चुपचाप उठकर चल दिया। तूने क्या कहा? वह बोला कि मेरेसे पूछा तो मैंने कहा कि मैं साधु हूँ। गुरुजी बोले कि तू साधु बन गया न! साधु बना, इसलिये मार पड़ी। पर मैं कुछ बना ही नहीं!

इस कहानीका तात्पर्य है कि कुछ-न-कुछ बननेपर ही मार पड़ती है। **कुछ बने नहीं तो परमात्मामें ही स्थिति होती है।** परमात्मा कुछ बनते नहीं। हम कुछ बन जाते हैं तो परमात्मासे अलग हो जाते हैं। मैं स्त्री हूँ, मैं पुरुष हूँ, मैं ब्राह्मण हूँ, मैं क्षत्रिय हूँ, मैं वैश्य हूँ, मैं शूद्र हूँ, मैं अन्त्यज हूँ, मैं मुसलमान हूँ, मैं हिन्दू हूँ, मैं ईसाई हूँ आदि कुछ बन जानेसे ही मार पड़ती है। कुछ न बने तो जीव परमात्मस्वरूप है। इसलिये भीतरसे बने कुछ नहीं।

कुछ बन जाते हैं, तब आफत आती है। कुछ बने नहीं तो आफत नहीं आती। भीतरमें कोई इच्छा न हो, कोई बनावटीपना न हो। न मुक्तिकी इच्छा हो, न बन्धनकी। कोई इच्छा न हो तो मुक्ति स्वतः-स्वाभाविक है। अतः कुछ बने नहीं, अपनी स्थिति परमात्मामें ही माने। चुपचाप अपने स्वरूपमें स्थित रहे। परन्तु कुछ बने बिना रस आता नहीं! रस बाँधनेवाला होता है।

परमात्माकी सत्ता स्वाभाविक बनी-बनायी है। बननेसे ही संसार हुआ है। नहीं बने तो संसार है ही नहीं! शरीर बनेगा तो रोटी, कपड़ा, मकान आदि सब चाहिये। कुछ बने ही नहीं तो क्या चाहिये?

श्रोता—कुछ भी नहीं बननेका कोई उपाय है क्या?

स्वामीजी—उपाय है—चुप रहना।

*** *** ***

श्रोता—आपने बताया कि अपने स्वरूपमें स्थित रहो। इसका क्या अभिप्राय है?

स्वामीजी—आपको सीधी बात बतायें, आप भगवान्‌के साथ रहो। यह उससे भी बढ़िया बात है! **अपने स्वरूपमें रहो तो ज्ञान होगा, और भगवान्‌के साथ रहो तो प्रेम होगा।** जैसे माँ-बापका अंश होता है, ऐसे हम स्वयं भगवान्‌के अंश हैं और भगवान्‌के साथ ही रहना है। आप मान लो कि मैं भगवान्‌के साथ हूँ। अपने स्वरूपमें स्थित होना कठिन होता है, पर यह सुगम पड़ता है। स्वरूपमें स्थित होना ज्ञानमार्ग है, यह भक्तिमार्ग है। मैं भगवान्‌के साथ हूँ—इसके सिवाय और कुछ चिन्तन मत करो। यह बहुत ही बढ़िया, उत्तम बात है! अपने-आपको भगवान्‌के चरणोंमें सौंप दो।

भगवान् 'है'-रूपसे सब जगह व्यापक हैं, उस 'है'-रूपमें ही मैं हूँ। यह भगवान्‌में विश्राम है! मूलमें सबसे श्रेष्ठ भक्तिमार्ग है। ज्ञानमार्ग और योगमार्ग साधन हैं, भक्तियोग साध्य है।

श्रोता—अभी शरीरसे अलगावका अनुभव नहीं हुआ, तो भगवान्‌के साथ कैसे रहें? हम भगवान्‌के

साथ अपनेको शरीर-सहित मानें कि शरीर-रहित मानें?

स्वामीजी—शरीर-सहित मानो। शरीरसे अलग होना ज्ञानमार्गमें आवश्यक है। भक्तिमार्गमें शरीरसे अलग माननेकी आवश्यकता नहीं है। आप जैसे हैं, वैसे शरीर-सहित ही भगवान्‌के चरणोंमें गिर जाओ।

संसारके साथ रहोगे तो जन्म-मरण होगा। इसलिये केवल इतना मान लो कि मैं संसारके साथ नहीं हूँ, भगवान्‌के साथ हूँ। अभी आपको कुछ मालूम नहीं होगा, कुछ विशेषता नहीं दीखेगी, पर परिणाम बहुत बढ़िया होगा!

*** *** ***

श्रोता—आजकल गृहस्थोंका खान-पान बिगड़ रहा है तो उनके घरकी भिक्षा मुझे (साधुको) लेनी चाहिये या नहीं?

स्वामीजी—अपने मनमें ग्लानि हो, मनमें सुहाये नहीं तो नहीं लेनी चाहिये।

श्रोता—गृहस्थोंके पास पैसा भी अन्यायका होता है तो उनकी भिक्षा लेनी चाहिये या नहीं?

स्वामीजी—आजकल ऐसा घर मिलना मुश्किल है! अतः उनकी भिक्षा उतनी ही ले कि थोड़ी-सी भूख बाकी रहे। थोड़ी-सी भूख रखे, निर्वाहमात्रके लिये ले तो दोष नहीं लगता—'**शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्**' (गीता ४। २१)। उसमें सुख ले, राजी हो जाय तो दोष लगेगा।

*** *** ***

भगवान्‌का चिन्तन, भजन-स्मरण, नाम-जप, कीर्तन करनेसे 'सब भगवान् हैं'—यह समझनेकी सामर्थ्य, ताकत आ जायगी। केवल बातोंसे यह बात समझमें नहीं आयेगी। जप, भजन, ध्यान, स्वाध्याय, सत्संग आदि करना है न करनेके लिये! कुछ भी न करनेके लिये करना है! इसलिये भगवान्‌को याद करो, चिन्तन करो, जप करो, स्वाध्याय करो, भगवान्‌से प्रार्थना करो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। सच्चे हृदयसे भगवान्‌में लग जाओ तो सब ठीक हो जायगा। अगर आपका भजन नकली हो तो नकली भी करते-करते असली हो जायगा! नकली करो तो भी रास्ता सही है!

गीताके पहले अध्यायका नाम 'विषादयोग' है, तो क्या विषाद (दुःख) भी योग होता है? तात्पर्य है कि जो भी भगवान्‌के सम्मुख कर दे, वह योग हो जायगा। जो परमात्मामें लगा दे, वह 'योग' है और जो संसारमें लगा दे, वह 'वियोग' अथवा 'भोग' है।

पैसा कमाना और भोग भोगना—इन दो कारणोंसे जो मनुष्यशरीर मुक्तिके लिये मिला है, वह बन्धनके लिये हो जायगा! मुक्तिकी सामग्री नरकोंकी सामग्री हो जायगी! जो उन्नति करनेके लिये मिला है, वह अधोगतिका कारण हो जायगा! इसलिये वस्तुकी अपेक्षा उसका सदुपयोग बढ़िया होता है।

धनका राग, महत्त्व, आसक्ति ही बाधक है, धन बाधक नहीं है। बाहरसे धन छुए ही नहीं, पर भीतरमें धनका महत्त्व है तो बन्धन है। परन्तु भीतरमें राग न हो तो धन कमाते हुए भी बन्धन नहीं होता।

*** *** ***

श्रोता—आप अपने मनकी सुनाओ।

स्वामीजी—मेरे मनकी बात तो यह है कि सबके भीतर भगवत्प्राप्तिकी लगन लग जाय, सबको भगवान्‌की प्राप्ति हो जाय, सब भगवद्भक्त हो जायँ, सब तत्त्वज्ञानी हो जायँ, सब मुक्त हो जायँ,

सब योगी हो जायँ, सबका कल्याण हो जाय!! यह आप चाहो तो बहुत सुगमतासे हो सकता है!

भगवान् अपने हैं। अपनी वस्तु मिलनेमें सुगमता होती है। भगवान् सदा साथमें रहते हैं। जहाँ जाओ, वहीं भगवान् साथमें हैं! नरकोंमें जाओ तो वहाँ भी भगवान् साथमें हैं। वे कभी हमारा साथ छोड़ते ही नहीं। जैसे बालक माँको अपना मानता है, ऐसे आप भगवान्‌को अपना मान लो। इससे भगवान् बहुत राजी होते हैं! मैं भगवान्‌का हूँ—यह हमारे हाथकी बात है, पर भगवान् दर्शन दें—यह हाथकी बात नहीं है। भगवान् चाहे उम्रभर दर्शन न दें, पर वे हमारे हैं।

*** *** ***

श्रोता—गीतामें भगवान्‌ने अर्जुनसे '**सर्वधर्मान्परित्यज्य०**' (१८। ६६) श्लोकमें कौन-से धर्मका त्याग करनेकी बात कही और क्यों कही?

स्वामीजी—अर्जुनने कहा था—'**धर्मसम्मूढचेताः**' (गीता २। ७) अर्थात् धर्मके विषयमें मेरा अन्तःकरण मोहित है। इसलिये भगवान् कहते हैं कि तुझे धर्म-अधर्मको, कर्तव्य-अकर्तव्यको जानना है तो सब छोड़कर मेरी शरण आ जा। भगवान्‌ने स्वरूपसे धर्मका त्याग नहीं बताया है। अगर स्वरूपसे धर्मका त्याग बताया होता तो अर्जुनको क्षात्रधर्म* अर्थात् युद्धका त्याग करना चाहिये था। परन्तु अर्जुनने अपने धर्मका त्याग नहीं किया है, प्रत्युत युद्ध किया है। अतः भगवान्‌ने धर्मके आश्रयका त्याग बताया है, धर्मका त्याग नहीं बताया। भगवान् कहते हैं कि तू मेरी शरण ले, धर्मकी शरण मत ले; क्योंकि धर्मका आश्रय लेनेवाला मनुष्य आवागमनको प्राप्त होता है—'**एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते**' (गीता ९। २१)। मेरी शरणमें आ जा तो सब धर्म उसके अन्तर्गत आ जायँगे।

*** *** ***

श्रोता—भगवान्‌के नामजपमें स्वरूपका ध्यान जरूरी है क्या?

स्वामीजी—ध्यान करना बहुत जरूरी है। ध्यानके लिये ही नामजप है। ध्यान मुख्य है। ध्यान लगा रहे और नामजप भूल भी जाय तो कोई हर्ज नहीं है।

श्रोता—बिना ध्यानके नामजप कर सकते हैं क्या?

स्वामीजी—उसका साधारण फल है।

श्रोता—भगवान्‌को हमने देखा नहीं तो ध्यान कैसे करें?

स्वामीजी—'है' का ध्यान करें। 'भगवान् है'—यह सब सन्त-महात्मा कहते हैं, शास्त्र कहते हैं। भगवान्‌के विषयमें विशेष जाननेकी जरूरत नहीं है। केवल 'है' मान लो तो ध्यान हो गया। 'भगवान् है'—यही ध्यान है। वह सब जगह परिपूर्ण है। सब जीवोंके भीतर, बाहर, ऊपर, नीचे, सब जगह भगवान् विराजमान है—ऐसा ध्यान रखो। हम भगवान्‌को मान ही सकते हैं, जान नहीं सकते।

श्रोता—कोई आदमी मर गया तो उसके लिये गीता-रामायणका पाठ कबतक करना चाहिये?

स्वामीजी—उसके निमित्त पाठ, श्राद्ध-तर्पण रोजाना करना चाहिये। कम-से-कम उसकी मृत्युकी तिथि और श्राद्ध-पक्ष—इन दो अवसरोंपर तो जरूर ही करना चाहिये।

श्रोता—इससे क्या मृतात्माको शान्ति मिलती है?

---

* **शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्। दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥** (गीता १८। ४३)

'शूरवीरता, तेज, धैर्य, प्रजाके संचालन आदिकी विशेष चतुरता तथा युद्धमें कभी पीठ न दिखाना, दान करना और शासन करनेका भाव—ये सब-के-सब क्षत्रियके स्वाभाविक कर्म हैं।'

स्वामीजी—जरूर शान्ति मिलती है। 'कल्याण' मासिक-पत्रके 'परलोक और पुनर्जन्मांक' में ऐसी बहुत बातें लिखी हैं।

श्रोता—हम जानते हैं कि भोग नाशवान् हैं तो भी भोगोंसे पिण्ड छूटता नहीं! कैसे छूटे?

स्वामीजी—भीतरमें भोगोंका राग है। रागका नाश विचारसे नहीं होता। रागका नाश तब होगा, जब भगवान्‌के भजन-ध्यानमें आनन्द आने लगेगा, मस्ती आने लगेगी। जैसे, छोटे बच्चे कंकड़से, ठीकरीसे, काँचके लाल-पीले टुकड़ोंसे प्रेम करते हैं तो वह प्रेम कब छूटता है? जब रुपयोंका लोभ लग जाता है, तब।

*** *** ***

अभी कलियुगका राज्य होनेसे आगन्तुक शक्ति तो कलियुगकी है, पर स्थायी शक्ति हमारे पास है! अनादिकालसे जो वास्तविक शक्ति है, वह भगवान्‌की है। कलियुगको शक्ति भी भगवान्‌की दी हुई है। कलियुगका स्वतन्त्र अधिकार नहीं है। स्वतन्त्र अधिकार हमारा है। हम भगवान्‌के हैं, भगवान् हमारे हैं। अतः हम भगवान्‌के अनुकूल हैं। हम कलियुगके अनुकूल हैं नहीं, पर हो जाते हैं।

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥
सो मायाबस भयउ गोसाईं। बँध्यो कीर मरकट की नाईं॥

(मानस, उत्तर० ११७। १-२)

'जीव ईश्वरका अंश है। अतः वह अविनाशी, चेतन, निर्मल और स्वभावसे ही सुखकी राशि है। हे गोसाईं! वह मायाके वशीभूत होकर तोते और वानरकी भाँति अपने-आप ही बँध गया।'

हम मायाके वश हो जाते हैं, हैं नहीं—***'मायाबस भयउ'***। हम मायाके वश नहीं हैं—यह अनादिकालसे है। अतः हमारा वास्तविक स्वरूप सदासे है, आगन्तुक नहीं है। परन्तु कलियुगका प्रभाव आगन्तुक और मिटनेवाला है। कलियुग चाहे लाखों वर्षोंका हो, पर वह मिटेगा; परन्तु हमारा स्वरूप करोड़ों-अरबों वर्ष बीतनेपर भी मिटेगा नहीं। हमारा स्वरूप इतना स्थायी है कि कभी मिटनेवाला है ही नहीं। भगवान्‌का अंश होनेसे हमारे पास भगवान्‌की शक्ति है। इसलिये डरनेकी जरूरत नहीं है। अन्तमें विजय हमारी होगी, कलियुगकी नहीं।

*** *** ***

श्रोता—आपने कहा था कि भोगोंका राग विचारसे नहीं मिटेगा, तो यह किस तरह मिटेगा, इस विषयमें और प्रकाश डालिये।

स्वामीजी—भगवान्‌में आकर्षण हो जाय, प्रेम हो जाय तो यह मिट जायगा। जो रस भोगोंमें मिलता है, उससे ज्यादा रस मिलेगा तो यह छूट जायगा। जैसे, बचपनमें काँचके अथवा कागजके लाल-पीले टुकड़े अच्छे लगते थे, पर जब रुपयोंमें राग हो गया तो अब वे अच्छे लगते हैं क्या? ऐसे ही जब भोगोंके रससे अधिक रस मिलेगा तो भोगोंका रस अपने-आप छूट जायगा। यह अभ्याससे नहीं छूटता। इस विषयमें दो बातें हैं। संसारका रस छूटेगा तो वह (अविनाशी) रस मिलेगा, और वह रस मिलेगा तो संसारका रस छूटेगा।

आप पहले भगवान्‌में लगो। स्वाध्याय, सत्संग आदिमें लगो। सत्संगमें रुचि होती है तो सत्संग अच्छा लगता है। सत्संग अच्छा लगते-लगते भगवान् भी अच्छे लगने लग जायँगे तो भोगोंका रस छूट जायगा। पारमार्थिक रस मिलेगा तो सांसारिक रस छूट जायगा। परन्तु पहले पारमार्थिक रस मिलना चाहिये। इसलिये पहले नामजप करो, कीर्तन करो, सत्संग करो, अच्छे-अच्छे ग्रन्थोंका अध्ययन करो,

उनको मन लगाकर पढ़ो। भक्तिके संस्कार हों तो भक्तोंके चरित्र पढ़ो। सत्संग करो, सत्संगकी मार्मिक बातोंको समझो, उनमें मन लगाओ तो रस आयेगा। रस आयेगा तो संसारका रस छूट जायगा।

सबसे तेज है—प्रार्थना! प्रार्थनामें बड़ी शक्ति है। आर्तभावसे प्रार्थना करो।

सच्चे हृदय से प्रार्थना जब भक्त सच्चा गाय है।
तो भक्तवत्सल कान में वह पहुँच झट ही जाय है॥

दु:खी होकर, रोकर प्रार्थना करो कि 'हे नाथ! मेरेसे छूटता नहीं!' गोस्वामीजी महाराज कहते हैं—

हौं हार्‌यौ करि जतन बिबिध बिधि अतिसै प्रबल अजै।
तुलसिदास बस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजै॥

(विनयपत्रिका ८९। ४)

'मैं नाना प्रकारके उपाय करते-करते थक गया; परन्तु यह मन अत्यन्त बलवान् और अजेय है। हे तुलसीदास! यह तो तभी वशमें हो सकता है, जब प्रेरणा करनेवाले भगवान् स्वयं इसे रोकें।'

आपके मनमें जैसी आये, वैसी प्रार्थना करो, सीखनेकी जरूरत नहीं। सीखी हुई प्रार्थना बढ़िया नहीं होती। जो प्रार्थना हृदयसे निकलती है, वह बहुत तेज होती है।

*** *** ***

जिसमें योगका अभिमान है, वह भोगी है, योगी नहीं। इसी तरह ज्ञानका अभिमान होनेसे साधक ज्ञानका भोगी और भक्तिका अभिमान होनेसे भक्तिका भोगी हो जाता है। जबतक भोगी है, तबतक वह संसार-बन्धनमें ही है। कारण कि भोगका सम्बन्ध संसारके साथ है, भगवान्‌के साथ नहीं। इसलिये भोगीका पतन हो जाता है।

श्रोता—भगवान्‌में हमारा चित्त कैसे लगे?

स्वामीजी—संसारको छोड़नेसे। संसार सर्वथा छूट जाय तो भगवान्‌में मन लगाना नहीं पड़ता, स्वत: लग जाता है। संसारमें कनक और कामिनी मुख्य हैं।

माधोजी से मिलना कैसे होय।
सबल बैरी बसै घट भीतर, कनक कामिनी दोय॥

इन दोनोंसे मन हटेगा तो भगवान्‌में अपने-आप लग जायगा। इसलिये निषेधात्मक साधन सबके लिये बढ़िया है।

भगवान्‌का प्रेम तो है, पर संसार नहीं है। भोगके समय भी संसार नहीं है, भगवान् हैं। भोगी भगवान्‌से रहित नहीं होता, पर योगी भोगसे रहित होता है। जबतक भोग होता है, जबतक पतनकी सम्भावना रहती है।

*** *** ***

कोई भी काम करो, उसमें रस मत लो। भोजन करो तो भी रस मत लो, सोओ तो भी रस मत लो, बैठो तो भी रस मत लो, सत्संग सुनो तो भी उसमें रस मत लो। भगवान्‌के विषयमें प्रसन्नता हो तो वह बाँधनेवाली नहीं है, पर संसारके विषयमें होनेवाली प्रसन्नता बाँधनेवाली है।

श्रोता—आपने कहा कि सत्संगमें भी रस मत लो?

स्वामीजी—यह बहुत ऊँची बात है! सत्संगमें रस लोगे तो परमात्माकी प्राप्तिमें देरी होगी। सत्संगमें

भी रस लोगे तो वहाँ अटक जाओगे अर्थात् ऊँचा नहीं उठोगे। रस आये तो आने दो, उसमें हानि नहीं है; परन्तु रस लेकर राजी हो जाओगे तो वर्षोंतक साधन करनेपर भी परमात्माकी प्राप्ति नहीं होगी। सत्संग, भजन-ध्यान, नामजप आदि सब परमात्मप्राप्तिके मार्ग हैं। मार्गमें ठहरोगे तो देरी होगी ही। इसलिये मार्गमें मत ठहरो।

रस लेनेसे आप भोगी हो जाओगे, योगी नहीं रहोगे। रस नहीं लेनेसे आप योगी हो जाओगे।

श्रोता—सत्संगमें रस लेना क्या है?

स्वामीजी—मैं बहुत अच्छा समझता हूँ! सुननेसे आनन्द आ गया! इस तरह रस लेनेसे वहीं अटक जाओगे। पारमार्थिक मार्गमें सात्त्विक सुख भी बाँधनेवाला होता है—'**सुखसङ्गेन बध्नाति**' (गीता १४। ६)। सांसारिक विषयमें सन्तोष करना अच्छा है, पर पारमार्थिक विषयमें सन्तोष करना अच्छा नहीं है। भजन करते हुए भी यह भाव रहना चाहिये कि अभी तो भजन कम हुआ है। जैसे, आपको रुपये अच्छे लगते हैं, पर आप उनमें सन्तोष नहीं करोगे तो बन्धन बढ़ेगा। इसके विपरीत पारमार्थिक बातोंमें आप सन्तोष करोगे तो बन्धन बढ़ेगा।

सुख लेनेकी चीज है ही नहीं, यह देनेकी चीज है। समाधिका भी सुख लोगे तो अटक जाओगे। मायासे सर्वथा ऊँचा उठना हो तो समाधिका भी सुख नहीं लेना है। समाधिमें, एकाग्रतामें, निर्विकल्पतामें भी राजी नहीं होना है। भगवान्‌में मन लग जाय तो बड़ी अच्छी बात है, पर उसमें सुख मत लो। सुख लोगे तो वहीं (मार्गमें ही) फँस जाओगे।

*** *** ***

श्रोता—बीमारीसे कैसे बचें?

स्वामीजी—**बीमारीसे नहीं, शरीरसे बचो! शरीर बड़ी बीमारी है!** शंकराचार्यजी महाराज कहते हैं—

'को दीर्घरोगो भव एव साधो किमौषधं तस्य विचार एव॥'

(प्रश्नोत्तरी ७)

'दीर्घरोग क्या है? हे साधो! संसारमें आना (जन्म-मरण) ही दीर्घरोग है, और उसकी दवा क्या है? विचार ही उसकी दवा है।'

शरीर तो एक दिन छूटेगा। बीमार रहे तो छूटेगा, स्वस्थ रहे तो छूटेगा। जितने दिन चले गये हैं, उतने उम्रमेंसे घट गये हैं। बाकी कितने दिन बचे हैं, यह पता नहीं!

*** *** ***

श्रोता—'**नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा**' (गीता १८। ७३); हमारी स्मृतिकी तत्काल जागृति कैसे हो?

स्वामीजी—इसमें खास बात लगनकी है। जैसे प्यासा आदमी जलको याद करता नहीं है, भूखा आदमी अन्नको याद करता नहीं है, उसकी याद अपने-आप आती है, ऐसे ही परमात्माकी याद अपने-आप आये तो यह लगन है। अगर लगन न हो और जान-बूझकर, जोर लगाकर याद करते हैं तो परमात्मप्राप्तिमें देरी लगती है। जिसको परमात्मप्राप्ति करनी है, उसको परमात्माकी याद अपने-आप आती है, वह याद करता नहीं है। याद करनेसे बहुत दिन बीत जाते हैं, पर याद आने लगे तो बहुत जल्दी काम होता है!

*** *** ***

श्रोता—मेरी भगवान्‌से विरहकी दशा एक-दो घण्टे तो रहती है, पर मैं चाहता हूँ कि यह निरन्तर रहे, तो यह कैसे बढ़े?

स्वामीजी—जो साधन किया जाता है, उस साधनका सुख लेनेसे वह साधन निरन्तर नहीं रहता। भगवान्‌से विरहमें जो सुख होता है, उस सुखमें आप लग जाते हो तो वह हरदम नहीं रहता। जैसे संसारी आदमी धनमें सन्तोष नहीं करता, ऐसे आप साधनमें सन्तोष मत करो, सुख मत लो। **सुख लेनेवाला भोगी होता है, योगी नहीं होता। योगी वह होता है, जो सुख नहीं लेता।** भोगीका साधन हरदम नहीं होता।

*** *** ***

लोगोंके भीतर स्वाभाविक यह धारणा बैठी हुई है कि हम संसारी आदमी हैं और परमात्माको प्राप्त करना है। यह धारणा गलत है। हम परमात्माके अंश हैं। परमात्माका घर हमारा घर है। यह संसार हमारा घर नहीं है। हमें अपने घर जाना है।

हम आये थे तो क्या लेकर आये थे और जायँगे तो क्या लेकर जायँगे—इन दो बातोंका आप ठीक मनन करो। माँ, बाप, भाई, बेटा, स्त्री आदि सब यहीं बनाये हैं, साथमें कुछ भी नहीं लाये और सब यहीं छूट जायँगे! साथमें कोई भी जायगा नहीं। कारण कि हम यहाँके हैं ही नहीं। यह दूसरोंका घर है। यहाँकी तिल-जितनी वस्तु भी साथ ले जा सकते नहीं। हम संसारी नहीं हैं, प्रत्युत साक्षात् भगवान्‌के बालक हैं।

ये बातें हरेक जगह मिलती नहीं! आप सत्संगीलोग तो इन बातोंको जानते हो, पर दूसरोंको इन बातोंका पता ही नहीं है! हम परमात्माके हैं; अतः परमात्माकी बात हमारे घरकी बात है। इस बातको सब भाई-बहन ठीक तरहसे समझो। संसारकी वस्तु आपकी है ही नहीं। हम परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही यहाँ आये हैं। हम भोग भोगनेके लिये, रुपये कमानेके लिये यहाँ बिल्कुल नहीं आये हैं—***'एहि तन कर फल बिषय न भाई'*** (मानस, उत्तर० ४४। १)। **अगर हम अपनेको यहाँका मानेंगे तो भगवान्‌की प्राप्तिमें बहुत कठिनता होगी! अगर यहाँका नहीं मानें तो ऊपरका भार सारा उतर जायगा!**

हम भगवान्‌के हैं—**'ममैवांशो जीवलोके'** (गीता १५। ७)। गीता भी यही कह रही है, रामायण भी यही कह रही है, उपनिषद् भी यही कह रहे हैं, वेद भी यही कह रहे हैं, सन्त-महात्मा भी यही कह रहे हैं कि हम परमात्माके हैं। हम यहाँके नहीं हैं—यह बात आप अपने भीतर बैठा लो तो परमात्माकी प्राप्ति बहुत सुगम हो जायगी!

आपको दो काम करने हैं। एक तो भगवान्‌का होकर रहना है और दूसरा, भगवान्‌का काम करना है। जैसे ब्राह्मण हरदम ब्राह्मण होकर रहता है, साधु हरदम साधु होकर रहता है, ऐसे ही आप हरदम भगवान्‌का ही होकर रहो, और जो भी काम करो, भगवान्‌का काम समझकर करो। मल-मूत्रका त्याग करना, झाड़ू देना, स्नान करना, कपड़ा धोना, भोजन करना, कुल्ला करना आदि सब काम भगवान्‌का काम है! यह **'पंचामृत'** याद रखो—

१) मैं भगवान्‌का हूँ २) जहाँ भी रहता हूँ, भगवान्‌के दरबारमें रहता हूँ ३) जो भी शुभ काम करता हूँ, भगवान्‌का ही काम करता हूँ ४) शुद्ध-सात्त्विक जो भी पाता हूँ, भगवान्‌का ही प्रसाद पाता हूँ, और ५) भगवान्‌के दिये प्रसादसे भगवान्‌के ही जनों (माँ-बाप, स्त्री-पुत्र, भाई, सम्बन्धी, कटुम्बी आदि)-की सेवा करता हूँ।

तात्पर्य है कि हमारा सम्बन्ध भगवान्‌के साथ है, संसारके साथ नहीं है।

जो आने और जानेवाला, मिलने और बिछुड़नेवाला, जन्मने और मरनेवाला तथा आरम्भ और अन्त होनेवाला होता है, वह हमारा नहीं होता। हमारा वह होता है, जो सदा हमारे साथ रहता है। सदा हमारे साथ रहनेवाले भगवान् हैं। नरकोंमें चले जायँ तो भी भगवान् साथमें हैं। चौरासी लाख योनियोंके भीतर भी भगवान् हैं। हमारे भीतर भी भगवान् हैं। हमारे साथमें भगवान् आये हैं और साथमें भगवान् ही जायँगे। भगवान्‌के सिवाय और क्या साथ जायगा, बताओ? पाप-पुण्य भी फल भुगताकर नष्ट हो जायँगे—**'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति'** (गीता ९।२१)।

*** *** ***

एक बातको मैंने बहुत बार कहा है और फिर कहता हूँ। जिन्होंने नहीं सुना है, वे विशेषतासे सुनें। हमें जो परमात्माकी प्राप्ति करना है, तत्त्वज्ञान प्राप्त करना है, भगवान्‌के दर्शन करना है, आदि-आदि जो बातें कही जाती हैं, वे खास अपनी हैं, और यह संसार अपना नहीं है। यह बहुत ध्यान देनेकी बात है! हमलोगोंके मनमें यह जँची हुई है कि हम तो संसारी हैं। हम संसार छोड़ेंगे तो परमात्माकी प्राप्ति करेंगे। वास्तवमें यह बात नहीं है। कारण कि हम ईश्वरके अंश हैं, संसारके अंश नहीं हैं—***'ईस्वर अंस जीव अबिनासी'*** (मानस, उत्तर० ११७। १); **'ममैवांशो जीवलोके'** (गीता १५। ७)। अतः परमात्माकी प्राप्ति करना हमारे घरकी बात है। परमात्मा हमारे घरके हैं, हमारे स्वामी हैं, हमारे पिता हैं। सब-के-सब जीव उनकी सन्तान हैं। परमात्माकी बात हमारे घरकी बात है, संसारकी बात हमारे घरकी नहीं है।

हम संसारमें आये तो साथमें कुछ भी नहीं लाये। नंगधड़ंग आये! यहाँ आकर आपने अपना नया कुटुम्ब बना लिया। जैसे, साधु होता है तो अपना नया कुटुम्ब बना लेता है कि ये हमारे गुरु हैं, ये हमारे दादा गुरु हैं, ये हमारे चेले हैं, ये हमारे गुरुभाई हैं, आदि-आदि। वह अपनी सृष्टि अलग बना लेता है! इसी तरह हमने यहाँ आकर अलग सृष्टि बनायी हुई है। पर जब यहाँसे जायँगे तो साथमें कुछ भी नहीं ले जायँगे; क्योंकि यह देश हमारा है ही नहीं। यहाँकी वस्तुएँ हमारी हैं ही नहीं। यहाँकी वस्तुओंको जो अपनी मान लेता है, उसका जन्म-मरण कभी छूटता ही नहीं!

जो अपना देश नहीं है, अपना कुटुम्ब नहीं है, अपना घर नहीं है, अपना धन नहीं है, उसको अपना मान लिया—यही बन्धन है। इस बन्धनसे छूटनेका नाम ही 'मुक्ति' है। भगवान्‌की प्राप्ति हो जाना 'भक्ति' है।

आपके पास जो वस्तुएँ हैं, वे सब-की-सब संसारकी हैं। उनको संसारकी सेवामें लगाओ। यथायोग्य जहाँ जैसी आवश्यकता हो, वहाँ लगाओ। उसका फल मत चाहो। उसकी वाह-वाह मत लो। **यह हमारा उपकार नहीं है, प्रत्युत ईमानदारी है।** उन वस्तुओंको अपनी मानना बेईमानी है। बेईमानीका फल जन्म-मरण है। बेईमानीका त्याग मुक्ति है।

*** *** ***

कई भाई-बहनोंकी जिज्ञासा है कि भगवान्‌में तत्परतासे लगना क्या होता है? भगवान्‌में तत्परतासे लगनेका तात्पर्य है—संसारका मोह छोड़ो। संसारमें जो अपने सम्बन्धी, कुटुम्बी हैं, उनमें मोह छोड़ना है। **जबतक संसारका मोह है, तबतक भगवान्‌में सच्चे हृदयसे लगे नहीं।**

मीराबाईने कहा है—***'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई'।*** आप ***'मेरे तो गिरधर गोपाल'*** मान लोगे, पर ***'दूसरो न कोई'*** नहीं कह सकते। माँ-बाप, स्त्री-पुत्र, भाई-भौजाई, भतीजे—ये खास कुटुम्बी हैं। इनके साथ जबतक मोह है, अपनापन है, तबतक भगवान्‌के साथ सम्बन्ध नहीं है। संसारका

सम्बन्ध छूट जाय, भीतरसे संसारका सम्बन्ध न रहे—यही असली भगवान्‌में लगना है।

संसारमें अपना कोई नहीं है—यही सच्चे हृदयसे भगवान्‌में लगना है। साधु होनेवाले भी अगर कुटुम्बियोंसे स्नेह रखते हैं, तबतक वे सच्चे हृदयसे साधु नहीं हुए। साधुका जन्म दूसरा हो जाता है। **अगर संसारमें मोह है तो भगवान्‌में प्रेम नहीं होगा।** एक म्यानमें दो तलवारें नहीं रह सकती। जो सच्चे हृदयसे साधु हो जाते हैं, उनको कुटुम्बियोंकी याद ही नहीं आती। आपत्तिमें, दुःखमें भी भाई-बन्धु याद नहीं आते। अगर उनका घरवालोंसे मोह है तो वे असली साधु नहीं हुए, केवल ऊपरका स्वाँग धारण किया है।

बहुतोंके मनमें यह बात है कि आप कहते हो कि सच्चे हृदयसे भगवान्‌में लग जाओ, तो सच्चे हृदयसे लगनेकी क्या पहचान है? यह पहचान है कि घरवालोंमें अपनापन मिट जाय, संसारका सम्बन्ध मनसे टूट जाय। जबतक कुटुम्बका मोह है, तबतक भगवान्‌में लगे नहीं। **आपका निवास वहाँ है, जहाँ आपका अपनापन है।**

*** *** ***

सब-के-सब जीव भगवान्‌के अंश हैं। गीतामें भगवान् कहते हैं—**'ममैवांशो जीवलोके'** (गीता १५। ७)। भगवान् तो सबको स्वीकार करते हैं, अगर आप इसको स्वीकार कर लो तो काम बना-बनाया है! केवल यह स्वीकार कर लो कि हम भगवान्‌के हैं तो बेड़ा पार है! कोई आफत आये तो भगवान्‌को पुकारो; क्योंकि वे ही हमारे पिता हैं। नहीं पुकारो तो सह लो! अगर सहायता चाहो तो भगवान्‌से कहो। अन्य किसीको कहनेकी जरूरत नहीं। आप मान लो कि हम भगवान्‌के हैं, बस, इतना ही काम है। कितनी सुगम, सरल बात है! जैसे कन्या पतिको स्वीकार कर लेती है तो वह पतिके गोत्रकी हो जाती है, ऐसे आप भगवान्‌को स्वीकार कर लो। साथमें एक शर्त है कि दूसरा मेरा कोई नहीं है; जैसे—मीराबाईने कहा है—***'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई'।*** व्यवहारमें माता-पिता आदि सबकी सेवा करो, सबका आदर-सत्कार करो, पर हृदयसे भगवान्‌को ही अपना मानो। **जप करने, भजन करने आदि सब साधनोंसे श्रेष्ठ बात है—भगवान्‌को अपना मानना।** आपके छोड़े बिना संसारमें अपनापन छूटेगा नहीं, भले ही जप करो या मत करो। मानना, स्वीकार करना अटल होता है। जप-ध्यान, कीर्तन, पदगान आदि सब छूट जाते हैं, पर भगवान्‌में अपनापन छूटता ही नहीं। स्वप्नमें भी नहीं छूटता। बिना याद किये स्वतः-स्वाभाविक रहता है। न वेश बदलना है, न साधु बनना है, न कहीं जाना है, न आना है, जहाँ बैठे हैं, वहीं-के-वहीं बैठे भगवान्‌के हो जाओ। बाहरसे कुछ बदला नहीं, पर मन बदल गया! आपकी कन्या विवाहके बाद भी आपके घरमें आती है, आपके घरका काम करती है, पर मनसे मानती है कि मैं यहाँकी नहीं हूँ।

सपूत भी होता है, कपूत भी होता है, आपको केवल कपूताई मिटानी है। निषिद्ध काम मत करो। शास्त्रनिषिद्ध खान-पान आदि मत करो। झूठ-कपट, जालसाजी, बेईमानी मत करो। रुपयोंके दास मत बनो। हम तो भगवान्‌के दास हैं, रुपयोंके दास नहीं हैं। रुपया आये तो मौज, न आये तो मौज! नफा हो जाय तो मौज, घाटा हो जाय तो मौज! आप जानो, आपका काम जाने! हम तो आपके बेटे हैं। नफा हो तो आपका, नुकसान हो तो आपका!

*** *** ***

उत्साही व्यक्तिके लिये कठिन काम भी सुगम हो जाता है, और हिम्मत हारनेसे सुगम काम भी कठिन हो जाता है—यह सूत्र याद रखो। जो सुगमता चाहता है, उसके लिये कठिनता आयेगी, और जो कठिनता चाहता है, उसके लिये सुगमता आयेगी। याद कर लो!

आपको एक मार्मिक बात बताता हूँ। ध्यान देकर सुनना। एक विवेकशक्ति होती है। मनुष्यकी जो महिमा है, वह विवेकसे ही है। विवेकके कारण ही वह मनुष्य है। यह विवेकशक्ति बहुत ऊँची है; परन्तु इस विवेकशक्तिको परमात्माकी प्राप्तिमें लगा दें तो जल्दी प्राप्ति नहीं होगी! कारण कि विवेकसे हम जड़का त्याग करते हैं। त्याग करनेसे त्याज्य वस्तु (जड़)-की सत्ता बहुत दूरतक रहती है, जिससे जल्दी उद्धार नहीं होता। इसलिये **विवेकको मुख्यता न देकर श्रद्धा-विश्वासको मुख्यता देनी चाहिये। श्रद्धा-विश्वासकी मुख्यता होनेपर बहुत जल्दी उद्धार हो जायगा!** विवेककी मुख्यता होनेसे कभी मन ठीक लगेगा, कभी नहीं लगेगा। कभी अपनी स्थिति बढ़िया दीखेगी, कभी नहीं दीखेगी। परन्तु श्रद्धा-विश्वास होनेपर दो बातें नहीं होगी। अगर विवेककी परवाह न करके श्रद्धा-विश्वासपूर्वक भगवान्‌के शरण हो जाय तो बहुत जल्दी काम होगा।

भक्तिमें सब परमात्मा हैं, त्याज्य वस्तु कोई है ही नहीं। जड़ भी परमात्मा हैं। जड़ भगवान्‌की अपरा प्रकृति है और चेतन परा प्रकृति है (गीता ७। ४-५)। अपराको भगवान् समझोगे तो जल्दी काम होगा और त्याग करोगे तो देरी लगेगी। जबतक जड़की सत्ता रहेगी, तबतक परमात्माकी प्राप्ति नहीं होगी। **अगर यह विचार हो जाय कि सब परमात्मा हैं तो बहुत जल्दी सिद्धि हो जायगी।**

भोग तथा संग्रहका त्याग करनेके लिये तो विवेक बढ़िया है, पर परमात्माकी प्राप्तिके लिये विवेक बढ़िया नहीं है। परमात्माकी प्राप्तिके लिये विश्वास बढ़िया है। **भोग तथा संग्रहके त्यागमें 'विवेक' प्रधान है और परमात्माकी प्राप्तिमें 'विश्वास' प्रधान है।** आप अपने माँ-बापको विश्वाससे मानते हैं, विवेकसे नहीं। माँ-बापको माननेमें विवेक काम नहीं करता।

*** *** ***

आप विचार करो तो सबसे दामी चीज (मूल्यवान् वस्तु) परमात्माकी प्राप्ति है। इसके समान दामी चीज कोई भी नहीं है; परन्तु यह दामसे मिलती ही नहीं! करोड़ों-अरबों-खरबों रुपये खर्च करनेपर भी यह चीज नहीं मिलती, पर सत्संगसे मुफ्तमें मिलती है! एक कौड़ीका भी खर्चा नहीं! आप थोड़ा ध्यान दो, यह आपकी खुदकी चीज है! ***'ईस्वर अंस जीव अबिनासी'***। स्थावर-जंगम, जलचर-थलचर-नभचर, जरायुज-स्वेदज-अण्डज-उद्भिज्ज, सब-के-सब जीव ईश्वरके अंश हैं। आप केवल इस बातको मान लें कि हम ईश्वरके हैं। यह केवल मेरे कहनेसे नहीं है, प्रत्युत सच्ची बात है।

परमात्मप्राप्ति, तत्त्वज्ञान, मुक्ति, परमप्रेम आदि चीजें बिल्कुल मुफ्तमें मिलती हैं। एक कौड़ीका भी खर्चा नहीं! कोई परिश्रम नहीं! इसमें न पैसा लगता है, न कोई फीस देनी पड़ती है, न परिश्रम करना पड़ता है, न किसीकी गरज करनी पड़ती है, न किसीका चेला बनना पड़ता है, न किसीका गुरु बनना पड़ता है! **अमूल्य वस्तु बिना मूल्य मिलती है!** इतनेपर भी आप लेते नहीं!!

कृपा करके सच्ची बात मान लो। केवल मानना है। माँ-बापको मानते हो तो क्या उसमें खर्चा लगता है? माँको माँ और बापको बाप माननेके लिये क्या कुछ खर्चा करना पड़ता है? कुछ परिश्रम करना पड़ता है? परमात्माकी प्राप्ति बिल्कुल मुफ्तमें होती है!

भगवान् भावसे मिलते हैं, क्रियासे नहीं। भावमें कोई परिश्रम नहीं करना पड़ता। अमूल्य चीज मुफ्तमें और सुगमतासे मिलती है। कहनेमें सुगमतासे कहते हैं, पर वास्तवमें वह मिली हुई है! केवल उधर ख्याल करो। चाहनामात्रसे कोई चीज नहीं मिलती, पर भगवान् चाहनामात्रसे मिलते हैं।

यहाँ (इस सत्संगमें) आपको सब बातें बिल्कुल मुफ्तमें मिलती हैं! यहाँ न गुरु बनानेकी जरूरत है, न फूल चढ़ानेकी जरूरत है, न चरणोंमें नमस्कार करनेकी जरूरत है, प्रत्युत केवल भगवत्प्राप्तिकी

चाहनाकी जरूरत है। केवल भगवत्प्राप्तिकी इच्छा हो, इतना ही आपके घरका खर्चा है! इच्छामात्रसे भगवान् मिलते हैं, तत्त्वज्ञान मिलता है, मुक्ति मिलती है, प्रेम मिलता है!

*** *** ***

श्रोता—मैं साधु हूँ। आप बताइये कि साधुका क्या कर्तव्य है?

स्वामीजी—संसारसे किसी तरहकी कोई इच्छा न रखे। कोई मेरी बात सुने, मेरी बात माने, मेरी सहायता करे आदि कोई इच्छा न रखे और भगवान्‌के शरण होकर उनका भजन करे। सर्वसमर्थ भगवान् मेरे अपने हैं—ऐसा माने और सब काम भगवान्‌का मानकर करे। खाना-पीना, सोना-जगना, उठना-बैठना, स्नान करना, हाथ धोना, मल-मूत्रका त्याग करना आदि सब काम भगवान्‌का काम मानकर करे।

केवल भगवान् ही मेरे अपने हैं। संसारमें कोई भी मेरा अपना नहीं है।

संसार साथी सब स्वार्थ के हैं,
पक्के विरोधी परमार्थ के हैं,
देगा न कोई दुःख में सहारा,
सुन तू किसी की मत बात प्यारा।

इसलिये संसारसे कुछ भी चाहना नहीं है। केवल भगवान्‌से चाहना है। अगर हिम्मत हो तो भगवान्‌से भी कुछ न चाहना और बढ़िया है!

चार बालक खेल रहे थे। इतनेमें उनके पिताजी चार आम लेकर आये। उनको देखते ही एक बालक आम माँगने लग गया कि आम दो! आम दो! दूसरा बालक आम लेनेके लिये रो पड़ा। पिताजीने उन दोनोंको एक-एक आम दे दिया। तीसरा बालक केवल आमकी तरफ देख रहा था और चौथा बालक आमकी तरफ न देखकर जैसे पहले खेल रहा था, वैसे ही मस्तीसे खेल रहा था।* उन दोनोंको भी पिताजीने एक-एक आम दे दिया। इस प्रकार चारों ही बालकोंको आम मिल गया, पर आम माँगनेवालेने अपनी इज्जत खो दी! पिताजीको गरज होगी तो खुद देंगे, हम क्यों माँगें! वे सब जानते हैं। वे दें चाहे मत दें, उनकी मरजी। हमें क्या मतलब है!

श्रोता—एक बालक पूछ रहा है कि मैं चोटी रखना चाहता हूँ और चोटी रखनेमें मेरी श्रद्धा भी है; परन्तु पाठशालामें जाता हूँ तो साथी बच्चे बहुत चिढ़ाते हैं, क्या करूँ?

स्वामीजी—उनसे कहना चाहिये कि मैं हिन्दू हूँ, तुम मुसलमान अथवा ईसाई हो। तुम हिन्दू हो ही नहीं! चोटी नहीं रखनेवाले मुसलमान या ईसाई होते हैं, हिन्दू नहीं होते।

श्रोता—कई भाई यहाँ सत्संग छोड़कर दूसरी जगह कथामें चले जाते हैं। इससे हमारे मनमें द्वन्द्व खड़ा हो जाता है कि हम भी कथामें जायँ कि नहीं जायँ?

स्वामीजी—जानेकी जरूरत नहीं! जिससे अपनी मुक्ति हो, वह साधन करो और जिससे मुक्ति न हो, वह मत करो। जिससे मुक्ति न हो, वह कितना ही बढ़िया हो, हमारे कामका नहीं है।

श्रोता—सत्संगकी आड़में जो पाप करते हैं, उनकी क्या दशा होगी?

*** यहाँ आम माँगनेवाला बालक 'अर्थार्थी' है, रोनेवाला बालक 'आर्त' है, केवल आमकी तरफ देखनेवाला बालक 'जिज्ञासु' है और आमकी परवाह न करके खेलमें लगे रहनेवाला बालक 'ज्ञानी' अर्थात् प्रेमी है (गीता ७। १६)।**

स्वामीजी—उनकी महान् दुर्दशा होगी! परन्तु आप यह समझो कि अभी कलियुग है और भगवान् कलियुगकी लीला कर रहे हैं। आप दोषदृष्टि मत करो। **आपकी दोषदृष्टि आपकी हानि करेगी!**

*** *** ***

साधकको अपनी तरफसे तो प्रयत्न करना चाहिये, पर अपने प्रयत्नसे कार्य सिद्ध हो जायगा—ऐसा नहीं मानना चाहिये। कार्य सिद्ध होगा भगवान्‌की कृपासे। कितनी ही मेहनत कर लो, पर होना अपने हाथमें नहीं है। भगवान् अर्जुनसे कहते हैं—**'मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्'** (गीता ११।३३) 'ये सभी मेरे द्वारा पहलेसे ही मारे हुए हैं। हे सव्यसाचिन् अर्थात् दोनों हाथोंसे बाण चलानेवाले अर्जुन! (तुम इनको मारनेमें) निमित्तमात्र बन जाओ।' तात्पर्य है कि तुम निमित्त बननेनेमें अर्थात् उद्योग करनेमें कमी मत रखो, पर होगा मेरी कृपासे। अन्तमें अर्जुनने भी यही कहा है—**'नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत'** (गीता १८। ७३) 'हे अच्युत! आपकी कृपासे मेरा मोह नष्ट हो गया है और मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है।' इसलिये भगवान्‌की कृपा ही मुख्य है। **अपना उद्योग पूरा करो, अपनी शक्ति बचाकर मत रखो, पर होगा कृपासे—यह मार्मिक बात है!** अपनेमें जितना अच्छापना आये, उसमें भगवान्‌की कृपा माने। अपना उद्योग माननेसे अभिमान आता है। आजतक जो भी अच्छा हुआ है, वह सब कृपासे ही हुआ है, कृपासे ही होता है और कृपासे ही होगा।

आछी करै सो रामजी, कै सद्‌गुरु कै संत।
भूँडी बणै सो आपकी, ऐसी उर धारंत॥

कल्पवृक्षमें भी वह शक्ति नहीं है, जो भगवान्‌की कृपामें है! भगवान्‌की कृपामें अपार शक्ति है! अच्छे-से-अच्छे महात्मा भी यही मानते हैं कि भगवान्‌की कृपासे हुआ है, यह नहीं मानते कि हमने किया है।

*** *** ***

श्रोता—भगवान्‌के बिना रहा न जाय—ऐसे उत्कट विरहकी प्राप्ति कैसे हो?

स्वामीजी—संसारका मोह छूटनेसे। शरीर-संसारका मोह ही बाधक है। शरीर तो छूटेगा ही, साथ रहेगा नहीं। पहले ही उसका मोह छोड़ दो तो निहाल हो जाओगे! आपसे मोह नहीं छूटे तो रोकर भगवान्‌से प्रार्थना करो।

शरीर-संसारका मोह छोड़नेपर सब पारमार्थिक कार्य सिद्ध हो जाते हैं। शरीर-संसार आपको छोड़ेंगे ही, उनको अपना मत मानो, और परमात्मा कभी आपको छोड़ेंगे नहीं, उनको अपना मान लो। जो आपको छोड़ेगा, उसको तो आप छोड़ते नहीं, और जो आपको छोड़ता नहीं, उसको आप पकड़ते नहीं—इतनी ही बाधा है!

*** *** ***

संसारमें दो वस्तुएँ हैं—पदार्थ और क्रिया। पदार्थकी जगह भगवान्‌का आश्रय और क्रियाकी जगह विश्राम ले आओ। करना कुछ नहीं है—यह विश्राम है। परन्तु इस (कुछ न करने)-के लिये योग्यता आनी चाहिये। योग्यताके लिये भगवान्‌का चिन्तन करो, जप करो, कीर्तन करो, प्रार्थना करो, सत्संग करो, भगवान्‌की लीला पढ़ो, भक्तोंकी लीला पढ़ो, आदि।

कुछ मत करो तो भगवान्‌की प्राप्ति हो जायगी। कारण यह है कि आप जहाँ हो, वहाँ भगवान् पूरे-के-पूरे हैं। इसलिये कुछ नहीं करनेसे परमात्मामें आपकी स्थिति हो जायगी। यह बहुत दामी, मूल्यवान् बात है! परन्तु पहले जप, ध्यान, कीर्तन, सत्संग, स्वाध्याय आदि करो। उससे न करनेकी

शक्ति आती है।

चुप होते ही अर्थात् कुछ न करते ही परमात्मामें स्थिति होती है, पर यह पहले मालूम नहीं होगा, बादमें मालूम होगा।

*** *** ***

श्रोता—मुझे भगवान्‌के विरहसे भी लाभ है और चुप साधनसे भी लाभ है, तो दोनोंमें मैं कौन-सा साधन ज्यादा बढ़ाऊँ?

स्वामीजी—जैसे व्यापार वह बढ़िया होता है, जिसमें पैसे ज्यादा आयें, ऐसे ही साधन वह बढ़िया होता है, जिसमें भगवान्‌की याद ज्यादा आये।

भगवान्‌के सिवाय आपका जितना भी सम्बन्ध है, वही अशुद्धि है। भगवान् पवित्र-से-पवित्र हैं—**'पवित्राणां पवित्रम्'** (विष्णुसहस्रनामस्तोत्रम् १०); **'यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः'** (पद्मपुराण, पाताल० ८०। ११) 'जो भगवान् विष्णुका स्मरण करता है, वह बाहर-भीतर सब ओरसे पवित्र हो जाता है। जितना भगवान्‌को अपना माना, उतनी ही शुद्धि है और जितना दूसरे व्यक्तियों तथा पदार्थोंको अपना माना, उतनी ही अशुद्धि है। भगवान्‌को अपना माना कि शुद्ध हुआ, और संसारको अपना माना कि अशुद्ध हुआ! मेरे रुपये, मेरा कुटुम्ब, मेरा घर—यह महान् अशुद्धि है। मेरा नहीं है, भगवान्‌का है—यह महान् शुद्धि है। ***'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई'***—यह मानते ही मनुष्य महान् शुद्ध, पवित्र हो जाता है। इतना ही नहीं, मीराबाईको याद करनेसे मनुष्य पवित्र हो जाता है! कारण कि मीराबाईका एक भगवान्‌के सिवाय किसीके साथ भी सम्बन्ध नहीं था। मीराबाईकी तरह एक भगवान्‌को अपना मान लो तो लौकिक-पारलौकिक सब तरहकी अशुद्धि मिट जायगी! आप शुद्ध हो जाओगे, निर्मल हो जाओगे, पवित्र हो जाओगे, निष्पाप हो जाओगे! इतने शुद्ध हो जाओगे कि आपके दर्शनसे, आपको याद करनेसे मनुष्य पवित्र हो जाय!

श्रोता—भगवान्‌के तो टुकड़े होते नहीं, फिर जीव भगवान्‌का अंश कैसे हुआ?

स्वामीजी—जैसे आकाश अलग दीखता है और घटाकाश (घड़ेमें आकाश) अलग दीखता है तो क्या आकाशका टुकड़ा हो गया? जैसे घटाकाशमें आकाशका टुकड़ा नहीं होता, ऐसे ही भगवान्‌के अंश जीवमें भगवान्‌का टुकड़ा नहीं होता।

*** *** ***

आपकी दृष्टि नाशवान्‌की तरफ है, इसलिये अविनाशी तत्त्व दीखता नहीं। आप नाशवान्‌की तरफसे दृष्टि हटा लें तो अविनाशी तत्त्व दीख जायगा। आपने जड़को ज्यादा महत्त्व दिया है, चेतनको कम दिया है, इसलिये चेतन समझमें नहीं आता। आप संसारकी तरफ दृष्टि रखते हो, परमात्माकी तरफ दृष्टि नहीं रखते। वास्तवमें परमात्मा आपको प्राप्त हैं; परन्तु आप देखते नहीं! आप देखें तो वे दीख जायँगे।

आप शरीरको देखते हो, जबकि आप शरीर नहीं हो, शरीर आपका नहीं है और शरीर आपके लिये भी नहीं है। शरीर सेवा करनेके लिये है, आपके लिये नहीं है। यह बात आपको नयी मालूम देगी, पर यह पक्की बात है। शरीर आपके कोई कामका नहीं है। स्थूल-सूक्ष्म-कारण तीनों शरीर केवल सेवा करनेके लिये हैं। परन्तु आपने शरीरको बड़े कामका समझ रखा है। आप शरीरकी तरफ देखते हैं, आत्माकी तरफ आप देखते ही नहीं। जैसे जूता गाँठनेवाला जूतेकी तरफ ही देखता है, आदमी कौन है, कैसा है—यह देखता ही नहीं; क्योंकि वह उसीका ग्राहक है, ऐसे ही आप शरीरकी तरफ

ही देखते हैं। शरीरमें परमात्माकी जो विभूति है, वह देखो तो उसीमें परमात्मा हैं। **शरीरमें आप अपनेको देखो तो उसीमें ही परमात्मा हैं।** आप देखो तो जरूर दीखेगा।

आप शरीरसे अलग हो। अगर अलग नहीं हो तो चौरासी लाख योनियाँ आपने कैसे भोगीं? जो मिलती है और बिछुड़ जाती है, वह वस्तु अपनी नहीं होती। इस विषयमें दो बातें खास प्रबल हैं—१) आप आये तो अपने साथ क्या लाये थे? और २) जब जाओगे तो अपने साथ क्या ले जाओगे? आप विचार करो तो चेत हो जायगा, होश आ जायगा! जो वस्तु आप अपने साथ न लाये हो, न साथ ले जा सकते हो, वह आपकी है ही नहीं। उस वस्तुको आपने अपनी मान लिया तो भगवान् कैसे दीखें?

*** *** ***

श्रोता—नौजवानोंको सत्पथपर लानेके लिये आपका क्या कहना है?

स्वामीजी—निःस्वार्थभावसे माँ-बापकी सेवा करो। बड़े लोगों की धर्मसम्मत आज्ञाका पालन करो। उनकी प्रसन्नता लो। बड़े लोगोंकी प्रसन्नतासे शक्ति मिलती है। माँ-बापसे कहो कि 'धन-सम्पत्ति दूसरे भाइयोंको दे दो, मेरेपर कृपा रखो। मेरेको धन-सम्पत्ति नहीं चाहिये। रुपये तो आते-जाते रहते हैं, मेरेको तो आपका अशीर्वाद चाहिये, आपकी प्रसन्नता चाहिये।' माँका पितासे भी अधिक विशेष आदर करो।

जवानी सेवा करनेके लिये है, सुख भोगनेके लिये नहीं है।

*** *** ***

श्रोता—शास्त्रोंमें कंचन-कामिनीको साधकके लिये इतना बाधक, खतरनाक क्यों बताया है?

स्वामीजी—वे खतरनाक नहीं हैं, आप आसक्ति करते हो, इसलिये खतरनाक बताया है। स्त्री तो माँ है, पर आप आसक्ति करते हो! **आपकी आसक्ति खतरनाक है।**

*** *** ***

श्रोता—पुरुष तो जनेऊ-संस्कार करवाते हैं, पर स्त्रियोंको जनेऊ-संस्कार क्यों नहीं करवाया जाता?

स्वामीजी—आपको वहम है कि जनेऊ लेना बढ़िया है, पर हम कहते हैं कि आफत है! तुम्हारेको (स्त्रियोंको) इस आफतसे बरी किया गया है! यह पुरुषोंपर लागू होता है। आप मानती हो कि जनेऊ लेनेसे हम बड़ी हो जायँगी, पर इससे पतन होगा पतन! राम-राम करो तो सब ठीक हो जायगा, पक्की बात है। मैंने देखा है और लोगोंने कहा है कि गायत्रीके जपसे ब्राह्मणपनेका अभिमान पैदा होता है और 'हरे राम०', 'राम-राम' जपनेसे नम्रता आती है। जिन्होंने जप किया है, उनकी कही हुई और मेरी सुनी हुई बात है। गायत्रीका जप करनेसे ब्रह्मतेज आता है। ऐसा व्यक्ति अगर स्त्रीपर क्रोध करे तो स्त्री मर जायगी! भगवान्‌का नाम सबसे बढ़िया है, पर लोग बड़ा होना चाहते हैं तो वे कभी बड़े नहीं होंगे! बड़ा होना तो पाप है!

जनेऊ मना करके भगवान्‌ने आपपर बड़ी कृपा की है! आपके लिये टैक्स माफ किया है! जिनका अधिकार नहीं है, वे अगर जनेऊ ले तो सिवाय अभिमान बढ़नेके और क्या होगा, बताओ? अभिमानसे पतन होगा, कल्याणमें बाधा लगेगी!

ईश्वरस्याप्यभिमानद्वेषित्वाद् दैन्यप्रियत्वाच्च।

(नारदभक्तिसूत्र २७)

'ईश्वरका भी अभिमानसे द्वेषभाव और दैन्यसे प्रियभाव है।'

संसृत मूल सूलप्रद नाना। सकल सोक दायक अभिमाना॥

(मानस, उत्तर० ७४। ३)

'अभिमान जन्म-मरणरूप संसारका मूल है और अनेक प्रकारके क्लेशों तथा समस्त शोकोंको देनेवाला है।'

ब्राह्मणपनेका अभिमान भी पतन करनेवाला है। फिर जो ब्राह्मण न होनेपर भी अभिमान करेंगे, उनका कितना पतन होगा! उनके कल्याणमें बाधा लगेगी ही! लोग तो अभिमानसे डरते हैं, पर आप अभिमान करना चाहती हैं, सांगोपांग मूर्खता है! इसमें लाभ नहीं है। नरकोंमें जानेसे क्या लाभ है? लाभ तो अपना उद्धार करनेमें है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य जनेऊ न लें तो दोष लगता है और दूसरे जनेऊ लें तो दोष लगता है। नीचे वर्णमें पैदा होना भगवान्‌की बड़ी कृपा है! ऊँचे वर्णका अभिमान अपने-आप छूट जायगा। आप विचार करो कि जनेऊ लेनेकी इच्छा क्यों होती है? आप अधिकार चाहोगी तो 'अधिकार' में 'अ' नहीं रहेगा, 'धिक्कार' रहेगा। भगवान्‌ने अधिकार नहीं दिया है तो बड़ी कृपा की है!

कितने आश्चर्यकी बात है कि मनुष्य कल्याण नहीं चाहता, अधिकार चाहता है! कल्याणका सीधा रास्ता है—राम-राम करो। जप करनेवाले एक अच्छे पढ़े-लिखे ब्राह्मणने मेरेसे कहा कि मैं 'हरे राम०' का जप करता हूँ तो नम्रता आती है और गायत्रीका जप करता हूँ तो भीतरमें एक तेज आता है, अभिमान आता है। अपने लिये तो नम्र होना बढ़िया है।

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

(श्रीपद्यावली ३२)

'अपनेको तिनकेसे भी नीचा समझकर, वृक्षसे भी सहनशील बनकर, स्वयं मानरहित होकर दूसरोंको मान देनेवाला बनकर सदा हरिनाम-संकीर्तन करता रहे।'

*** *** ***

जैसे वायु सब जगह परिपूर्ण है। जहाँ कहीं पंखेसे, हाथसे हिलायें, वहीं वह प्रकट हो जाती है, ऐसे ही परमात्मा सब जगह समान रूपसे परिपूर्ण है। जहाँ आप अपनी स्थिति मानते हैं, वहाँ परमात्माकी स्थिति भी वैसी-की-वैसी है। अतः वहीं परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी। अगर परमात्मप्राप्तिके लिये क्रिया करेंगे तो उससे दूर हो जायँगे। क्रिया और पदार्थ प्रकृति है। इसलिये परमात्मप्राप्तिके लिये कुछ नहीं करना है। कुछ नहीं करनेकी शक्ति पानेके लिये जप, ध्यान, कीर्तन, सत्संग, स्वाध्याय आदि अनेक उपाय हैं। इन उपायोंसे अन्तःकरणमें यह शक्ति आ जायगी कि कुछ भी न करे। कारण यह है कि भीतरमें एक 'करनेका वेग' है। इस वेगको निकालनेके लिये साधन करना है। भोग तथा संग्रहकी चाहना रखनेसे करनेका वेग शान्त नहीं होता। अतः भोग, संग्रह, मान, बड़ाई, आदर, सत्कार आदि कुछ भी पानेकी इच्छा न रखकर निष्कामभावसे सबकी सेवा करे तो इससे स्थिर होनेकी शक्ति आती है। कारण कि **मनकी कामना ही चंचलता है। कामना मिट जायगी तो चंचलता भी मिट जायगी।**

करना दो रीतिसे होता है—पानेके लिये और करनेका वेग मिटानेके लिये। पानेके लिये जो करना होता है, उससे शान्ति नहीं मिलती। निष्कामभावसे केवल भगवदाज्ञाका पालन करनेसे, शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार कार्य करनेसे करनेका वेग मिट जाएगा। करनेका वेग मिटनेसे शान्त होनेकी ताकत आ जायगी और सर्वत्र परिपूर्ण परमात्माका अनुभव हो जायगा।

जहाँ आप हैं, वहाँ परमात्मा पूर्णरूपसे हैं। वहीं उनके चरण हैं, वहीं उनके नेत्र हैं, वहीं उनका मुख है! जहाँ भगवान्‌के चरण हैं, वहीं भगवान्‌का मस्तक है! भगवान्‌को दीपक दिखाओ तो देखनेकी शक्ति भी वहीं है! भोग लगाओ तो भोजन करनेकी शक्ति भी वहीं है! पूजन करो तो चरण भी वहीं हैं! पुष्प चढ़ाओ तो मस्तक भी वहीं है! जैसे, स्याहीमें सब भाषाएँ लिखनेकी शक्ति है, चाहे हिन्दी लिखो, चाहे अँग्रेजी लिखो, चाहे अन्य कोई भाषा लिखो। सोनेमें सब जगह सब तरहके गहने हैं, चाहे जिस जगह जो गहना बना लो। **पत्थरमें सब जगह सब तरहकी मूर्तियाँ हैं, आवरण हटा दो तो मूर्ति प्रकट हो जायगी। ऐसे ही परमात्मा सब जगह हैं, संसारकी इच्छा मिटा दो तो परमात्मा प्रकट हो जायँगे।**

परमात्मा निराकार भी है, नीराकार भी है, साकार भी है, द्विभुज भी है, चतुर्भुज भी है, सहस्रभुज भी है। वह सब जगह है, इसलिये सब जगह ही उसकी प्राप्ति हो सकती है। पर उसकी प्राप्ति तब होगी, जब कामना नहीं रहेगी, भोग तथा संग्रहकी इच्छा नहीं रहेगी। जब हम इच्छारहित हो जायँगे, तब वह शक्ति प्रकट हो जायगी। इच्छामात्रसे ही वह शक्ति दबी हुई है। **कामनासे वह परमात्मतत्त्व ढका हुआ है।** इसलिये कुछ भी इच्छा न हो। केवल भोग तथा संग्रहकी ही नहीं, मानकी, बड़ाईकी, आदरकी, सत्कारकी, किसी लोककी, वैकुण्ठलोक आदिकी भी कोई इच्छा न हो।

इच्छारहित होनेके लिये ही तीर्थ, व्रत, उपवास, जप, कीर्तन, ध्यान, सत्संग, स्वाध्याय, पठन-पाठन आदि सब उद्योग हैं। कामना-पूर्तिके लिये भी उद्योग है और कामना-नाशके लिये भी उद्योग है। अगर कामना-पूर्तिके लिये उद्योग करोगे तो कामनाका अन्त नहीं आयेगा। सत्य, त्रेता, द्वापर, कलि—ये चारों युग बीत जायँगे तो भी इच्छाओंका अन्त नहीं आयेगा! इसलिये सब इच्छाएँ मिटा दें। परमात्माकी प्राप्तिकी भी इच्छा न करें। इच्छा करोगे तो परमात्मासे दूर हो जाओगे। सब इच्छाएँ मिटनेपर स्वतः-स्वाभाविक परमात्मा ही रह जायँगे अर्थात् प्रकट हो जायँगे!

*** *** ***

श्रोता—कई वर्षोंसे सत्संग कर रहा हूँ, लेकिन स्वभावमें कुछ ऐसी खराबियाँ हैं, जो निकल नहीं पा रही हैं! जैसे, दूसरोंमें दोष देखना, निन्दा करना, बिना कारण क्रोध करना, दुर्व्यसन करना आदि दोष छूटते नहीं हैं! बड़ा प्रयत्न करता हूँ और बार-बार 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं' कहता हूँ, पर मनकी खिन्नता नहीं मिटती है! अब मैं क्या करूँ?

स्वामीजी—जैसे आपकी कन्या विवाह होनेपर पतिकी हो जाती है, उसका गोत्र बदल जाता है, पतिका ही गोत्र हो जाता है, ऐसे आप अपने-आपको भगवान्‌के अर्पण कर दो। आपका गोत्र भगवान्‌का ही 'अच्युतगोत्र' हो जाय। भीतरसे यह पक्का मान लो, स्वीकार कर लो कि मैं भगवान्‌का ही हूँ और मनमें यह समझो कि मैं भगवान्‌का हो गया। अपने-आपको भगवान्‌का नहीं मानते, इसलिये सुधार नहीं होता। **अपने-आपको भगवान्‌का स्वीकार कर लो तो सब ठीक हो जायगा, स्वभाव सुधर जायगा।**

आप सत्संग तो करते हो, पर 'मैं भगवान्‌का हूँ'—यह अभी स्वीकार नहीं किया है। आप अपने घरके ही बने रहते हो, भगवान्‌के नहीं हुए।

बिगरी जनम अनेक की सुधरै अबहीं आजु।
होहि राम को नाम जपु तुलसी तजि कुसमाजु॥

(दोहावली २२)

'तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि तू कुसंगका त्याग करके रामका होकर उनके नामका जप करे तो अनेक जन्मोंकी बिगड़ी हुई दशा आज और अभी सुधर जायगी।'

भगवान्‌का होकर नामजप आदि करो तो बिल्कुल परिवर्तन हो जायगा। जैसे, विवाह होनेपर फिर लड़की कुँआरी नहीं होती। संसारकी सेवा करो, अच्छी तरहसे कमाओ, सबका पालन-पोषण करो, पर भीतरसे भगवान्‌के हो जाओ। और कुछ नहीं करना है, केवल दृढ़तासे स्वीकार कर लो कि **'मैं भगवान्‌का ही हूँ, और भगवान् ही मेरे अपने हैं'**। अपने-आपको बदल दो कि मैं भगवान्‌का हो गया। अपने-आपको बदल दो तो सब बदल जायगा।

प्रयागराज जानेके लिये कई आदमी रात्रिमें मथुरासे नौकामें बैठ गये। वे रातभर नौकाको खेते रहे। जब सुबह प्रकाश हुआ तो एक शहर देखा। लोगोंसे पूछा कि यह शहर कौन-सा है? लोगोंने कहा कि यह मथुरा है। उनको बड़ा आश्चर्य हुआ कि मथुरासे तो हम चले थे! देखा तो पता चला कि एक बात तो हम भूल गये, नौका खोली ही नहीं! नौका रस्सेसे बँधी हुई थी। रातभर नौका चलायी, पर वहीं-के-वहीं रहे! ऐसे ही आप सब काम करते रहे, पर भगवान्‌के हुए ही नहीं! भगवान्‌के हो जाओ तो सब काम अपने-आप ठीक हो जायगा, करना नहीं पड़ेगा। केवल यह बात मान लो कि मैं भगवान्‌का हो गया। मैं संसारकी सेवा करूँगा। अपने माता-पिता, स्त्री, पुत्र, भाई, भौजाई आदिकी सेवा करूँगा, पर इनको अपना न मानकर भगवान्‌को ही अपना मानूँगा। इतना करके देखो तो सही!

वास्तवमें आपने अभीतक सत्संग किया ही नहीं है! कुसंगमें पड़े हो! सत्संगके समय बैठे-बैठे चिन्तन करते हो। सत्संग करे और फर्क न पड़े, ऐसा हो ही नहीं सकता! ऐसे सत्संगियोंकी बात मैंने सुनी है, जो छोटे बच्चोंको सत्संगमें इस कारण नहीं जाने देते कि इनकी कच्ची बुद्धि है, बात लग जायगी! मैं तो पक्का हूँ! एक नहीं सुनूँगा, भले ही बीस वर्ष सत्संग करूँ! ऐसी पक्की बुद्धिवाले होकर आप सत्संग करते हो, फिर फर्क कैसे पड़ेगा!

*** *** ***

एक मार्मिक बात है! आज जो बात कही जाय, उसमें अभ्यास करनेकी जरूरत नहीं है। उसको केवल आप स्वीकार कर लें, मान लें। जैसे, मनुष्य गुरुको स्वीकार करता है, अभ्यास नहीं करता; कन्या पतिको स्वीकार करती है, अभ्यास नहीं करती; गोद जानेवाला अपनेको उसका बेटा स्वीकार करता है, अभ्यास नहीं करता; साधु होनेवाला साधुपनेको स्वीकार करता है, अभ्यास नहीं करता, ऐसे ही आप स्वीकार कर लो कि **'मैं केवल भगवान्‌का ही हूँ और केवल भगवान् ही मेरे अपने हैं'**। आप स्वीकार कर लो तो बहुत लाभकी बात है! यह बात सदासे ऐसी है, नयी नहीं है। मनुष्य चेला बनता है तो नया बनता है, गोद जाता है तो नया बनता है, साधु बनता है तो नया बनता है, पर भगवान्‌का नया नहीं बनता। आप सदासे ही भगवान्‌के अंश हैं—***'ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥'*** (मानस, उत्तर० ११७। १)। इस बातको आप दृढ़तापूर्वक स्वीकार कर लो तो बड़ा भारी लाभ है, मामूली लाभ नहीं! आज ही काम बन जायगा! वर्षोंतक सत्संग करो तो इतना लाभ नहीं है, जितना केवल इस बातको दृढ़तासे स्वीकार करनेमें है! कच्ची बातको भी स्वीकार कर लेनेपर वह पक्की हो जाती है, फिर पक्की बातको स्वीकार करनेपर वह पक्की क्यों नहीं होगी? वह तो है ही ऐसी।

जैसे दृढ़तासे भगवान्‌को अपना माना, ऐसे ही दृढ़तासे मान लें कि शरीर मेरा नहीं है। कारण कि मिलने और बिछुड़नेवाली चीज अपनी नहीं होती—यह पक्का सिद्धान्त है। जैसे पतिकी होनेपर

कन्या कभी अपनेको कुँआरी नहीं मानती, ऐसे ही भगवान्‌का होनेपर कभी अपनेको अनाथ, बिना मालिकका न माने। ऐसा माने कि भगवान् मेरे मालिक हैं, मैं भगवान्‌का दास हूँ। जैसे जंगली पशु सूना होता है, ऐसे मैं सूना नहीं हूँ। कुत्तेके गलेमें पट्टा होता है तो हरेक उसको मारता नहीं। **आप अपनेको भगवान्‌का स्वीकार कर लें तो यमराज भी आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा!**

* * * * * * * * *

श्रोता—यह सब (संसार) और मैं दोनों वासुदेव ही हैं—'**सकलमिदमहं च वासुदेवः**' (विष्णुपुराण ३। ७। ३२) और जीव मेरा ही अंश है—'**ममैवांशो जीवलोके**' (गीता १५। ७)—ये दोनों साधनाएँ एक साथ चल सकती हैं क्या?

स्वामीजी—बिल्कुल चल सकती हैं। जीव भगवान्‌का अंश है, पुत्र है। पिता ही पुत्ररूपमें पैदा होता है—'**पिता वै जायते पुत्रः**'। पिता-जैसा ही पुत्र होता है—'***चेतन अमल सहज सुख रासी***'। अतः मैं वासुदेव भी हूँ और वासुदेवका अंश भी हूँ—ये दोनों बातें ठीक हैं।

श्रोता—आप कहते हैं कि भगवान्‌को मान लो। कन्याके सामने तो पति है, इसलिये वह पतिको मान लेती है, पर हमारे सामने भगवान् तो हैं नहीं, फिर उनको कैसे मानें?

स्वामीजी—कन्याके सामने पति नहीं है, प्रत्युत पुरुष है। पुरुषको वह पति मानती है। जिस पुरुषको वह पति मानती है, उसको कोई बेटा मानता है, कोई बाप मानता है, कोई भाई मानता है, कोई मामा मानता है, कोई मित्र मानता है। पति दीखता ही नहीं! यह सब आपकी मान्यता है। मान्यता चाहे दीखनेपर करो, चाहे न दीखनेपर करो। पति दूसरे देशमें चला जाय, दीखे नहीं तो भी उसको पति मानती है। यह मान्यताके सिवाय और क्या है? पाँच स्त्रियोंके सामने उनके पाँच पति खड़े हों तो क्या आप बता सकते हो कि किस स्त्रीका कौन पति है?

एक सृष्टि भगवान्‌की की हुई है और एक सृष्टि जीवकी की हुई है। जीवको बाँधनेवाली जीवकृत सृष्टि है। भगवत्कृत सृष्टि बाँधनेवाली नहीं है। आपने किसीको भाई मान लिया, किसीको पति मान लिया, किसीको पुत्र मान लिया—यह आपकी बनायी हुई सृष्टि है, ईश्वरकी बनायी हुई नहीं है। कुछ बालक आपसमें लड़ पड़े। किसीने कहा कि मेरे पिताजी श्रेष्ठ हैं। किसीने कहा कि नहीं, मेरे दादाजी श्रेष्ठ हैं। किसीने कहा कि नहीं, मेरे नानाजी श्रेष्ठ हैं। किसीने कहा कि नहीं, मेरे मामाजी श्रेष्ठ हैं। आगे देखा तो आदमी एक ही निकला! यह जीवकृत सृष्टि है। जीवकृत सृष्टि ही जीवको दुःख देती है।

पति दीखता है—यह बिल्कुल झूठी बात है। पतिको आप मानते हो। न पति दीखता है, न पुत्र दीखता है, न पिता दीखता है। यह आपकी (जीवकृत) सृष्टि है।

आपको मानना हो तो '**वासुदेवः सर्वम्**' (सब भगवान् हैं) मान लो। निहाल हो जाओगे! परन्तु आपको मुक्तिसे परहेज है! जिससे बन्धन हो, वह मानेंगे, पर जिससे मुक्ति हो, वह नहीं मानेंगे! जिससे नरकोंमें जायँ, वह बात मानेंगे। मानना ही हो तो जिससे कल्याण हो, वह मानो। जीवकृत सृष्टि छोड़ दो और ईश्वरकृत सृष्टि मान लो तो मुक्ति हो जायगी। जितना बन्धन है, वह आपका माना हुआ है। इसलिये आपपर मुक्तिकी जिम्मेवारी है।

* * * * * * * * *

श्रोता—हम पूछते हैं कि भगवान्‌का ध्यान कैसे करें तो आप बताते हैं कि 'है' का ध्यान करो। हमको ऐसा लगता है कि 'है' का ध्यान तो ज्ञानयोगकी बात है। हमको तो भक्तियोगके विषयमें पूछना

है।

स्वामीजी—'है' का ध्यान दोनोंमें हो सकता है। यह सगुण-निर्गुण सबके लिये है।

श्रोता—जब भगवान् सबको विवेक देते हैं तो फिर वे भजन करनेकी प्रेरणा क्यों नहीं दे देते?

स्वामीजी—देते हैं, सबको देते हैं; परन्तु मनुष्य उस प्रेरणाको मानते नहीं। जब रावण सीताजीका हरण करने चला, तब उसके मनमें प्रेरणा हुई कि यह काम अच्छा नहीं है। परन्तु उसकी उपेक्षा करके रावणने जबर्दस्ती वह काम किया। ऐसे ही मनुष्योंके भीतर प्रेरणा होती है, पर वे मानते नहीं, उपेक्षा कर देते हैं!

*** *** ***

एक बार सरल हृदयसे दृढ़तापूर्वक स्वीकार कर लें कि मैं केवल भगवान्‌का ही हूँ और केवल भगवान् ही मेरे अपने हैं। मैं भगवान्‌का हूँ, भगवान् मेरे हैं—यह बात आप बार-बार कहते हो; परन्तु विचारपूर्वक देखें तो बालक माँका बार-बार नहीं होता। इसमें एक मार्मिक बात है, आप ध्यान दो।

आपके मनमें यह जँची हुई है कि यह अभ्याससे होगा, पर अभ्याससे यह बात नहीं होती। आपको ऐसी बात कहते कई वर्ष हो गये, पर कामना नष्ट हो गयी क्या? यह बात अभ्याससे होनेवाली है ही नहीं! गोद जानेवाला दो बार नहीं जाता। साधु होनेवाला दो बार नहीं होता। कन्याका विवाह दो बार नहीं होता—***'बार बार चढ़त न त्रिया कौ सौ तेल है'*** (सुन्दर० २। १३)। मैं भगवान्‌का हूँ—ऐसा एक बार कहते ही भगवान्‌का हो गया। परन्तु बार-बार कहोगे तो उम्रभर कहते रहो, नहीं होगा! आपको ऐसा कहते हुए इतने वर्ष बीत गये, भगवान्‌के हो गये क्या? आप रोजाना 'मैं भगवान्‌का हूँ' कहते रहो, नहीं होगा। दृढ़तापूर्वक एक बार कह दो कि 'मैं भगवान्‌का हूँ' तो भगवान्‌के हो ही गये। एक बार कहनेके बाद दुबारा क्या कहोगे? दुबारा कहोगे तो पहले कही हुई बात रद्दी हो गयी! बीस बार, पचास बार, सौ बार कहो, सब-की-सब बात रद्दी हो गयी! इसलिये एक बार सरल हृदयसे दृढ़तापूर्वक कह दो कि 'हे नाथ! मैं आपका हूँ'। यह बहुत मार्मिक और बढ़िया बात है!

शिष्य एक बार ही होता है, दो-चार बार नहीं होता। आज शिष्य हो गया, कल फिर शिष्य हो जाय, परसों फिर शिष्य हो जाय—ऐसा नहीं होता। यह बार-बार कहनेसे नहीं होता.....नहीं होता.....नहीं होता! आप बार-बार अपनेको भगवान्‌का कहते हो तो वास्तवमें अभीतक भगवान्‌के हुए नहीं! सत्संग करते कई वर्ष हो गये, पर अभीतक भगवान्‌के नहीं हुए! यह अभ्यासकी बात नहीं है। सच्चे हृदयसे एक बार दृढ़तापूर्वक मान लो कि मैं भगवान्‌का हूँ। दो बार कहनेकी जरूरत ही नहीं है।

मेरी प्रार्थना है कि आज आप एक ही बार कह दो कि 'हे नाथ! मैं आपका हूँ'। अब मैं किसीका नहीं रहा, केवल भगवान्‌का रहा। एक बार कह दिया तो कह दिया। दुबारा आप क्या कहोगे? विवाह दो-चार बार होता है क्या? ब्राह्मण और अग्निकी साक्षीमें एक ही बार विवाह होता है। भगवान्‌ने भी अग्निकी साक्षीमें एक ही बार सुग्रीवसे मित्रता की। आप भी चाहे अग्निकी साक्षीमें कह दो, चाहे गंगाजीकी साक्षीमें कह दो, चाहे सत्संगमें कह दो। यह अभ्याससे होनेवाली चीज नहीं है.....नहीं है.....नहीं है! एक बार विवाह होनेके बाद कन्या फिर कुँआरी नहीं होती। विवाह होते ही उसका गोत्र बदल गया।

सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते।
सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सतां सकृत्॥

(महाभारत वन० २९४। २६; मनुस्मृति० ९। ४७)

'कुटुम्बमें धन आदिका बँटवारा एक ही बार होता है, कन्या एक ही बार दी जाती है और किसी वस्तुको देनेकी प्रतिज्ञा भी एक ही बार की जाती है। सत्पुरुषोंके ये तीनों कार्य एक ही बार हुआ करते हैं।'

आप एक बार दृढ़तापूर्वक कह दो कि 'हे नाथ! मैं आपका हूँ' तो संसारका सम्बन्ध छूट जायगा, नहीं तो सौ बार कहनेपर भी नहीं छूटेगा! सौ वर्षतक कहनेपर भी नहीं छूटेगा! आप कीर्तनमें भी बार-बार कहते हो कि *'मैं आपका हूँ, आपका हूँ.....'* तो भगवान्‌के हो गये क्या? क्या आपके जीवनमें परिवर्तन हो गया? यह कहनेसे नहीं होगा, प्रत्युत माननेसे, स्वीकार करनेसे होगा।

हमारे सत्संगमें ऐसी बातें सुननेपर भी अगर आपको लाभ नहीं होता तो कब लाभ होगा? कहाँ होगा? अगर आप मानते हो कि यहाँ नहीं होगा, और जगह कल्याण होगा तो और जगह जाओ। जहाँ कल्याण होगा, वहीं जाओ। कल्याणमें देरी मत करो। अगर यहाँ कल्याण होगा तो बात मानो। बात माने बिना कल्याण कैसे होगा?

*** *** ***

साधकके लिये दो बातें खास हैं—१) परमात्मा सब जगह, कण-कणमें परिपूर्ण हैं, और २) मैं परमात्माका ही अंश हूँ। ये दो बातें आपकी समझमें नहीं आयें तो भी मान लें। इससे आपकी आध्यात्मिक उन्नति बहुत सरलतासे, सुगमतासे हो जायगी। इसके बाद तीसरी बात है कि जहाँ आप हैं, वहाँ पूरे-के-पूरे परमात्मा हैं। इसलिये परमात्माको बाहर ढूँढ़नेकी जरूरत नहीं है। भजन-ध्यान, जप-कीर्तन, सत्संग-स्वाध्याय आदि करते रहो; परन्तु परमात्मा बाहर हैं, कहीं जायँगे तो उनकी प्राप्ति होगी—ऐसा मत मानो। **परमात्मा हमारे भीतर हैं—इतनी बात मान लो, तो फिर आपको अपनेमें परमात्मा ही दीखेंगे।**

परमात्मा सब जगह व्यापक हैं तो मेरेको छोड़कर व्यापक नहीं हैं। वे सब जगह परिपूर्ण हैं तो मेरेमें भी वैसे-के-वैसे ही हैं। अतः मैं परमात्मामें हूँ, परमात्मा मेरेमें हैं। मैं परमात्माका ही हूँ और परमात्मा ही मेरे अपने हैं। मैं परमात्माका सनातन अंश हूँ। परमात्मा मेरे परम पिता हैं। गीतामें भगवान् कहते हैं—'**ममैवांशो जीवलोके**' (गीता १५। ७)। भगवान्‌ने जीवको '**ममांशः**' (मेरा अंश) नहीं कहा है, प्रत्युत '**मम एव अंशः**' (मेरा ही अंश) कहा है। तात्पर्य है कि यह शरीर पिताका अंश है, पर साथमें माँका अंश भी है; परन्तु जीव केवल मेरा ही अंश है, साथमें प्रकृतिका अंश नहीं है। अतः जीव भगवत्स्वरूप ही है। जैसे परमात्मा सच्चिदानन्द हैं, ऐसे ही जीव भी सत्-चित्-आनन्द-स्वरूप है।

जैसे आप माँ-बापको अपना मानते हैं, ऐसे ही एक बार सरल हृदयसे दृढ़तापूर्वक मान लें कि मैं केवल भगवान्‌का हूँ और केवल भगवान् ही मेरे अपने हैं। मैं सेवा सबकी करूँगा, सुख सबको पहुँचाऊँगा, दुःख किसीको भी नहीं पहुँचाऊँगा, पर अपना केवल भगवान्‌को ही मानूँगा। मैं केवल भगवान्‌का हूँ, अन्य किसीका नहीं हूँ। केवल भगवान् ही मेरे हैं, अन्य कोई मेरा नहीं है।

मैं परमात्माका स्वरूप भी हूँ और अंश भी हूँ—दोनों बातें हैं। अद्वैतको माननेवाला स्वरूप (परमात्माके साथ एकता) मान ले और द्वैतको माननेवाला अंश मान ले। जैसे भगवान् मरते नहीं हैं, ऐसे ही मैं भी मरता नहीं हूँ—

राम मरे तो मैं मरूँ, नहिं तो मरे बलाय।
अविनाशी का बालका, मरे न मारा जाय॥

ऐसे भगवान्‌के साथ एकताका अनुभव हो जाय तो ज्ञान हो गया, और उनको अपना मान ले तो भक्ति हो गयी।

*** *** ***

श्रोता—भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेमाभक्तिमें डूबनेका उपाय क्या है?

स्वामीजी—संसारका मोह छोड़ना मुख्य बात है। संसारका मोह छोड़े बिना भक्ति पैदा नहीं होगी।

कबीर मनुआँ एक है, भावे जिधर लगाय।
भावे हरि की भगति करे, भावे विषय कमाय॥

संसारका मोह छोड़ दो तो प्रेम हो जायगा, पक्की बात है। संसारका मोह बहुत बाधक है। यह व्यवहारमें भी गड़बड़ी करता है, अच्छी-अच्छी बातोंमें भी विघ्न डालता है। **नाशवान्‌का मोह अविनाशीमें प्रेम नहीं होने देगा।** नाशवान्‌का मोह मत रखो तो व्यवहार और परमार्थ दोनों सिद्ध हो जायँगे। नाशवान्‌से मोह रखो और अविनाशीकी प्राप्ति चाहो तो यह सम्भव नहीं है। जिस भाई या बहनको परमात्माकी प्राप्ति करनी हो, उसको संसारका मोह छोड़ना पड़ेगा। कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग—तीनों योगोंमें नाशवान्‌का मोह छोड़ना पड़ेगा, तभी अविनाशीकी प्राप्ति होगी। भगवान्‌ने गीताके अन्तमें अर्जुनसे पूछा कि क्या तेरा मोह नष्ट हो गया? तो अर्जुनने कहा—**'नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा'** (गीता १८। ७३)।

हृदयमें नाशवान्‌का महत्त्व हो तो पारमार्थिक उन्नति नहीं होती। चिन्मयताकी प्राप्तिमें जड़ताका मोह खास बाधक है। जड़ताका मोह असाधन है। असाधनके त्यागसे ही साधन होगा। असाधनका त्याग करोगे तो साधन बड़ा सुगम, सरल हो जायगा। मोह समस्त व्याधियोंका मूल है—***'मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला'*** (मानस, उत्तर० १२१। १५)। मोहके रहते आध्यात्मिक उन्नति नहीं हो सकती। मनुष्य बातें सीख सकता है, पर भीतरमें शान्ति नहीं हो सकती। नाशवान्‌का मोह छोड़े बिना अविनाशीमें स्थिति कैसे होगी? विनाशीमें मोह रहेगा तो अविनाशीकी प्राप्ति कैसे होगी? विनाशीका मोह आप छोड़ते नहीं, अविनाशीकी प्राप्ति आपको होती नहीं। आप बातें सुना सकते हो, व्याख्यान दे सकते हो, विवेचन कर सकते हो, पर मोह छोड़े बिना अन्तःकरणमें शान्ति नहीं मिलेगी। आपको मोह छोड़ना ही पड़ेगा, एकदम पक्की, सच्ची बात है। **संसारका मोह छोड़ना पड़ेगा.....पड़ेगा.....पड़ेगा, अन्यथा पारमार्थिक उन्नति नहीं होगी.....नहीं होगी.....नहीं होगी।** जितने सन्त हुए हैं, सबने मोह छोड़ा है। मोह खुद तो रहेगा नहीं, पर आपका काम बिगाड़ देगा!

*** *** ***

श्रोता—जीव ईश्वरका अंश है—यह बात तो समझमें आ जाती है, पर यह जीव ईश्वर ही है—यह बात समझमें नहीं आती!

स्वामीजी—कोई हर्ज नहीं! जीव ईश्वरका है—इतनी बात समझमें आ जाय तो काम हो गया! आपका साधन ठीक हो जायगा।

श्रोता—जीव ईश्वर ही है—यह बात समझमें न आनेका हेतु यह है कि ईश्वर कभी प्रारब्धका फल नहीं भोगता, पर जीव प्रारब्धका फल भोगता है!

स्वामीजी—यह हेतु गलत है! भगवान् श्रीकृष्ण ईश्वर थे, पर अन्तमें उनको बाण क्यों लगा? बाण लगनेमें हेतु क्या था? उनको बाण लगा, इसलिये वे ईश्वर नहीं थे—यह कहना गलत है। भगवान् श्रीरामको वनवास क्यों हुआ? यद्यपि प्रारब्धका भोग भगवान्‌को लगता नहीं, तथापि **भगवान्‌ने कृपापूर्वक लीला करके हमें यह बताया कि मेरेको भी प्रारब्धका भोग भोगना पड़ता है तो तुम्हें भी भोगना**

पड़ेगा। जीव ईश्वर ही है—यह बात आप नहीं मानो तो साधनमें कोई बाधा नहीं लगेगी, पर यह हेतु गलत है।

ईश्वरकी तरह जीवन्मुक्त ज्ञानी महापुरुषका भी प्रारब्ध होता है। एक दोहा आता है—

ग्यान उदय जब होत है, संचित कर्म बिलाय।
क्रियमाण उपजै नहीं, प्रारब्ध रह जाय॥

परन्तु उसमें भोगबुद्धि होती ही नहीं, वह सुखी-दुःखी होता ही नहीं। प्रारब्धका काम है—सुखदायी या दुःखदायी परिस्थिति पैदा करना। सुखी-दुःखी करना प्रारब्धका काम नहीं है। अतः तत्त्वज्ञान होनेपर भी प्रारब्धके अनुसार परिस्थिति तो आयेगी ही, पर उसको दुःख नहीं होगा। शरीर शान्त होनेसे पहले भाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)-को बहुत तकलीफ हुई। उनके पास बड़े-बड़े डॉक्टर मौजूद थे और उन्होंने भाईजीकी पीड़ा दूर करनेके लिये कई इंजेक्शन लगाये, पर भाईजीने उनसे कहा कि मेरेको इंजेक्शन न लगाकर बेहोश कर दो! सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका)-ने मेरे सामने कहा कि रोना मेरा स्वभाव नहीं है, पर पीड़ा बहुत हो रही है! अतः **दुःखदायी परिस्थिति जीवन्मुक्तके सामने भी आती है, अवतारकालमें भगवान्‌के सामने भी आती है, पर वे भीतरसे दुःखी नहीं होते। वे शरीरसे अलग होते हैं।**

मुक्त होनेपर आप खुद जान जाओगे कि जीव ईश्वरका स्वरूप है—**'वासुदेवः सर्वम्'** (गीता ७। १९)। जीव ईश्वरका स्वरूप है—यह बात नहीं मानो तो आपके कल्याणमें कोई बाधा नहीं आयेगी; परन्तु प्रारब्धका हेतु मानना गलत है। यह कसौटी नहीं है।

जीव जीव ही है, ईश्वर ईश्वर ही है—***'जीव कि ईस समान'*** (मानस, उत्तर० १११ ख)। ब्रह्मसूत्रमें आया है—**'जगद्व्यापारवर्जम्'** (४। ४। १७) अर्थात् जगत्‌की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय करनेवाली शक्ति ईश्वरमें है, जीवमें नहीं है।

श्रोता—मेरा हृदय बड़ा कठोर है! किसीकी मृत्युपर भी हृदय द्रवित नहीं होता, आँसू नहीं आते, और भगवान्‌के लिये भी रोना नहीं आता! ऐसा कठोर हृदयवाला भी क्या कभी भगवान्‌में लगकर भगवान्‌के प्रेममें पिघल सकता है?

स्वामीजी—आप निराश मत होओ। हृदय कठोर है तो ज्ञानके मार्गमें लग जाओ। ज्ञानके मार्गमें कठोर हृदय बाधक नहीं होता। कठोर हृदय प्रेममें बाधक होता है। विचार करें, रामजीके वियोगमें दशरथजीने प्राण दे दिये, पर कौशल्याजीने प्राण नहीं दिये, जबकि वह माँ थी! कारण यह था कि कौशल्याजीका ज्ञानमार्ग था। इधर कौशल्याजी और उधर जनकजी ज्ञानी थे। इधर दशरथजी और उधर सुनयनाजी प्रेमी थीं।

कठोर हृदयवालेकी भी मुक्ति हो सकती है, पर प्रेमकी प्राप्ति नहीं होगी।

*** *** ***

एक मार्मिक बात है! अगर उसको समझा जाय तो अत्यधिक लाभकी बात है! उसको सब समझ सकते हैं, सब मान सकते हैं। उसको समझनेमें सबकी योग्यता है, सबका अधिकार है। उसको सब स्वीकार कर सकते हैं। आप स्वीकार करें या न करें, इसमें आपकी मरजी है, आप स्वतन्त्र हैं।

किसी वस्तुको एक तो मिटाना होता है, और एक उसको पहलेसे ही अस्वीकार करना होता है कि वह है ही नहीं। पहले स्थापना करके फिर उसको मिटानेमें बहुत कठिनता होती है। परन्तु पहलेसे ही समझ लिया जाय कि वह है ही नहीं तो उसको मिटाना बहुत सुगम होता है।

जीव परमात्माका अंश है। गोस्वामीजी महाराजने कहा है—***'ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥'*** (मानस, उत्तर० ११७। १)। भगवान् कहते हैं—**'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः'** (गीता १५। ७) 'इस संसारमें जीव बना हुआ आत्मा (स्वयं) मेरा ही सनातन अंश है'। परमात्मा परम शुद्ध, परम पवित्र हैं। इसलिये उनका अंश जीव भी स्वरूपसे परम शुद्ध, परम पवित्र है। अगर इस बातको आप स्वीकार कर लें तो बड़े भारी लाभकी बात है!

आप अमल हैं, दोषरहित हैं। दोष आगन्तुक हैं। अगर आपमें दोष होते तो कभी मिटते नहीं। मायाके वशमें होनेसे जीवमें दोष आये हैं—***'सो मायाबस भयउ गोसाईं'*** (मानस, उत्तर० ११७। २)। मैं और मेरा, तू और तेरा यह माया है—***'मैं अरु मोर तोर तैं माया'*** (मानस, अरण्य० १५। २)। यह मैं-मेरा जीवका किया हुआ है, ईश्वरका किया हुआ नहीं है। ***'मायाबस भयउ'*** कहनेका तात्पर्य है कि मायाके वशमें होना आगन्तुक दोष है, आपके स्वरूपमें नहीं है।

मूलमें सब-के-सब जीव शुद्ध हैं, दोषरहित हैं, पापरहित हैं, अविनाशी हैं, चेतन हैं, सहज आनन्दस्वरूप हैं। इतनी बात आप कृपा करके स्वीकार कर लें, फिर इसका अनुभव भी हो जायगा। आप जितने यहाँ बैठे हो, उन सबसे मैं पूछता हूँ कि काम, क्रोध आदि जो दोष हैं, वे आते और जाते हैं—यह अनुभव है कि नहीं? किसका अनुभव है कि ये हरदम रहते हैं? आप हरदम रहते हो, पर कोई भी दोष आपमें आठों पहर रहता है क्या? दोष आते हैं तो मन-बुद्धिमें आते हैं, शरीरमें आते हैं, स्वरूपमें नहीं आते। अगर आप मानते हैं कि हमारे संस्कारोंमें आते हैं तो संस्कार पैदा हुए हैं या नित्य हैं? अतः दोष आगन्तुक हैं, आपमें नहीं हैं—इसको मान लो तो मेरेपर आपकी बहुत कृपा मानूँगा मैं! अभी अनुभव नहीं हो तो नहीं सही। पहले मानना ही पड़ता है। बच्चा क-ख-ग सीखता है तो क्या सीखते ही पुस्तक पढ़ लेता है? अतः आप कृपा करके पहले मान लो कि वास्तवमें दोष आगन्तुक है, आपके स्वरूपमें नहीं है। ऐसा माननेपर दोष दूर होना शुरू हो जायगा। परन्तु अपनेमें मानोगे तो दूर करना कठिन हो जायगा। दोष हमारेमें नहीं हैं—इसको स्वीकार कर लो तो आपकी निर्दोषता जल्दी सिद्ध हो जायगी। अगर दोषको अपनेमें मानकर हटानेकी चेष्टा करो तो सत्संग करते हुए कितने वर्ष हो गये, अभीतक हटे नहीं, फिर कैसे हटेंगे? आपने उनको अपनेमें मान लिया तो अब कौन हटायेगा? ब्रह्माजी भी क्या करेंगे?

आप दोषको अपनेमें मानकर हटाते हैं तो वास्तवमें उसको दृढ़ करते हैं! क्योंकि अपनेमें मानते हैं, तभी तो हटाते हैं! ज्यों हटाते हैं, त्यों वह दृढ़ होता है। अगर यह मान लें कि दोष अपनेमें है ही नहीं तो उसकी जड़ ही कट गयी! दोष अपनेमें नहीं हैं, आते हैं। कुत्ता घरमें आ जाय तो वह घरका मालिक हो गया क्या? वह आ गया तो उसको निकाल दो।

आपका प्रश्न यह नहीं होना चाहिये कि दोष कैसे मिटे? यह प्रश्न होना चाहिये कि निर्दोषताका अनुभव कैसे हो? इसके लिये सबसे पहले आप स्वीकार करो कि हमारा स्वरूप शुद्ध है, हमारेमें दोष नहीं है। स्वीकार करनेसे क्या होगा? सच्ची बात स्वीकार करनेसे वह सिद्ध हो ही जायगी।

अब यह प्रश्न पैदा होता है कि निरन्तर निर्दोषताका अनुभव कैसे हो? दोष अपनेमें आयें ही नहीं, उनका आना बन्द हो जाय, इसके लिये आप ध्यान रखो कि मेरेको कामना नहीं करनी है, क्रोध नहीं करना है, लोभ नहीं करना है; क्योंकि हमारे करनेसे ही ये आते हैं। हम नहीं करेंगे तो ये नहीं आयेंगे। अगर ऐसा करनेपर भी दोष न मिटें, अपनी तरफसे चेष्टा करनेपर भी उनका आना बन्द न हो तो आर्त होकर, दुःखी होकर, रोकर 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो तो वे मिट जायँगे!

हौं हार्‌यौ करि जतन बिबिध बिधि अतिसै प्रबल अजै।
तुलसिदास बस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजै॥

(विनयपत्रिका ८९। ४)

'मैं नाना प्रकारके उपाय करते-करते थक गया; परन्तु यह मन अत्यन्त बलवान् और अजेय है। हे तुलसीदास! यह तो तभी वशमें हो सकता है, जब प्रेरणा करनेवाले भगवान् स्वयं इसे रोकें।'

अगर नहीं मिटें तो प्रार्थना करते ही रहो। प्रार्थना करते-करते कभी पट मिट जायँगे! मोटर स्टार्ट करते हैं तो सामनेकी चाभीको घुमाते हैं। चाभी बार-बार घुमाते-घुमाते कभी एक ही बारमें मोटर स्टार्ट हो जाती है।

दोष क्यों आते हैं? इसलिये आते हैं कि आप शरीरको मैं-मेरा अर्थात् 'मैं शरीर हूँ' और 'शरीर मेरा है'—ऐसा मानते हैं। वास्तवमें आप शरीर नहीं हो और शरीर आपका नहीं है।

*** *** ***

श्रोता—प्रेम और मोहमें क्या अन्तर है?

स्वामीजी—जो भगवान्‌में है, वह प्रेम है और जो संसारमें है, वह मोह है। मोहमें बन्धन होता है, पर प्रेम मुक्तिसे भी ऊँचा है।

संसारमें सामान्य रीतिसे सबमें प्रेम हो सकता है। अपना बेटा हो या वैरी हो, शत्रु हो या मित्र हो, सबमें एक समान प्रेम हो सकता है। सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका)-ने कहा था कि जिन्होंने हमारेको धोखा दिया है, उनमें विश्वास तो नहीं होता, पर हमारे प्रेममें कमी नहीं है। समष्टि संसारमें किसीसे किंचिन्मात्र भी स्वार्थ न हो और सबमें भगवद्‌भाव हो। अनेक रूपोंमें भगवान् ही हैं।

जहाँ किसीसे कुछ लेनेकी इच्छा होती है, वहाँ मोह होता है। भगवान्‌से भी कुछ लेनेकी इच्छा मोह है; परन्तु वह मोह प्रेममें परिणत हो जाता है।

भगवान्‌में काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि कुछ भी हो जाय, वह सब प्रेममें परिणत हो जाता है!

श्रोता—जो शत्रु होता है, उसमें प्रेम कैसे होगा?

स्वामीजी—वह स्वरूप किसका है? स्वरूप भगवान्‌का है तो प्रेम ही होगा। भगवान् कलियुगकी लीला करते हैं। कलियुगकी लीला करनेपर भी हैं तो भगवान् ही! भगवान्‌के सिवाय कुछ भी नहीं है।

*** *** ***

श्रोता—भगवान् मेरे हैं और मैं भगवान्‌का हूँ—यह स्वीकृति अन्तःकरणकी शुद्धिके बिना ही हो जायगी क्या?

स्वामीजी—हाँ। भगवान्‌के सम्मुख होते ही अन्तःकरण अशुद्ध नहीं रहता। सच्चे हृदयसे भगवान्‌के सम्मुख हो जाओ तो जैसे सूर्यके सामने अँधेरा नष्ट हो जाता है, ऐसे ही करोड़ों जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं, एक जन्मकी तो बात ही क्या है!

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

(मानस, सुन्दर० ४४। १)

सम्मुख होना खास बात है। जैसे विवाह होते ही कन्याका गोत्र बदल जाता है, ऐसे ही भगवान्‌के

सम्मुख होते ही आपका गोत्र बदल जायगा, आपका पहलेवाला शरीर नहीं रहेगा, आप महान् पवित्र हो जाओगे! इसलिये मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप भगवान्‌के सम्मुख हो जाओ कि मैं भगवान्‌का हूँ, भगवान् मेरे हैं। इसके सिवाय आप कौन-सा उपाय (व्रत-उपवास, गंगा-स्नान आदि) करोगे, जिससे करोड़ों जन्मोंके पाप नष्ट हो जायँ?

श्रोता—भगवान्‌के सम्मुख होनेकी विधि क्या है? सम्मुख कैसे हुआ जाय?

स्वामीजी—जैसे आपकी कन्या ससुरालके सम्मुख हो जाती है और आपसे विमुख हो जाती है। कोई साधु होता है तो उसके लिये घरवाले मर गये और वह घरवालोंके लिये मर गया। इस प्रकार संसारसे सम्बन्ध छोड़ दे तो भगवान्‌के सम्मुख हो गया। इसमें तीन बातें हैं—संसार (शरीर) मैं नहीं, संसार मेरा नहीं और संसार मेरे लिये नहीं। केवल पूछो नहीं, करके देखो!

आप करना चाहो तो बहुत सुगम, बहुत सरल उपाय है कि आप केवल मान लो, स्वीकार कर लो कि मैं भगवान्‌का हूँ, भगवान् मेरे हैं। इतनेमात्रसे पूरा काम हो जायगा! संसारसे अपना सम्बन्ध मत मानो, पर सेवा सबकी कर दो। सेवा ढूँढ़नेकी जरूरत नहीं है। जो सामने आ जाय, उसकी सेवा कर दो। जैसे आपकी कन्या ससुरालकी बन जाती है, ऐसे आप भगवान्‌के बन जाओ।

अगर आप अपना कल्याण चाहते हो, मुक्ति चाहते हो, उद्धार चाहते हो, कृतकृत्य होना चाहते हो, ज्ञातज्ञातव्य होना चाहते हो, प्राप्तप्राप्तव्य होना चाहते हो तो केवल स्वीकार कर लो कि मैं भगवान्‌का ही हूँ और भगवान् ही मेरे अपने हैं। केवल स्वीकार कर लो, सब ठीक हो जायगा! 'मैं भगवान्‌का हूँ' तो अहंता गयी, और 'भगवान् मेरे हैं' तो ममता गयी! आप कितने ही पापी क्यों न हों, भगवान्‌के होते ही महान् पवित्र हो जाओगे!

*** *** ***

श्रोता—लम्बे समयसे शरीरमें बीमारी है, जिससे हरदम बीमारीका चिन्तन होता है। उसकी जगह भगवान्‌का चिन्तन कैसे हो?

स्वामीजी—ऐसा मानो कि बीमारीके रूपमें खुद भगवान् आये हैं! यह बात पक्की जमा लो। साक्षात् भगवान् कृपा करके हमारा पाप दूर करनेके लिये, हमारेको शुद्ध, निर्मल बनानेके लिये आये हैं। ऐसा भाव रखोगे तो बीमारी तो दूर हो जायगी, उससे पहले महान् तपस्या हो जायगी!

'वासुदेवः सर्वम्' सब कुछ वासुदेव है तो क्या बीमारी वासुदेव नहीं है? सुखमें, दुःखमें, नफेमें, घाटेमें, अनुकूलतामें, प्रतिकूलतामें, हरेक अवस्थामें भगवान् हैं। यह परमात्मप्राप्तिका बहुत बढ़िया उपाय है! यह सोचकर प्रसन्नता आनी चाहिये कि हमारा जन्म-मरण मिटानेके लिये भगवान् कृपा करके बीमारी-रूपसे आये हैं! वैद्य कड़वी दवा देता है तो वह अच्छी नहीं लगती, पर उसका परिणाम अच्छा होता है, रोग मिट जाता है।

बालकको पढ़ाई करनेमें कष्ट तो होता है, पर उस कष्टसे वह शुद्ध हो जाता है, विद्वान् हो जाता है। थोड़े दिन कष्ट उठानेसे वह उम्रभरके लिये सुखी हो जाता है। खेलकूदमें सुख तो मिलता है, पर उम्रभर वह दुःख पाता है। ऐसे ही मनुष्यशरीर भी पढ़ाई करनेके लिये है। चौरासी लाख योनियोंमें यह मनुष्यशरीर ब्रह्मचर्य-आश्रम है। यह भोग भोगनेके लिये नहीं है। **सुखी होना भी भोग भोगना है और दुःखी होना भी भोग भोगना है।**

*** *** ***

एक खास बात है कि सब अच्छे काम भगवान्‌की कृपासे होते हैं। अच्छी बात मिलती है तो

वह भी भगवान्‌की कृपासे, अच्छे पुरुष मिलते हैं तो वह भी भगवान्‌की कृपासे, अच्छी बुद्धि पैदा होती है तो वह भी भगवान्‌की कृपासे, पारमार्थिक रुचि होती है तो वह भी भगवान्‌की कृपासे, अच्छेके लिये परिवर्तन होता है तो वह भी भगवान्‌की कृपासे!

आछी करै सो रामजी, कै सद्‌गुरु कै संत।
भूँडी बणै सो आपकी, ऐसी उर धारंत॥
ऐसी उर धारंत, तभी कछु बिगड़ै नाहीं।
उस सेवक की लाज, प्रतिज्ञा राखे सांई॥
संतदास मैं क्या कहूँ, कह गये सन्त अनंत।
आछी करै सो रामजी, कै सद्‌गुरु कै संत॥

सभी अच्छी बातोंके मूलमें परमात्मा ही हैं और सभी खराब बातोंके मूलमें हमारी कुबुद्धि, संसारकी आसक्ति ही है। इसलिये हमारेको कोई अच्छी बात मिले, अच्छी सद्‌बुद्धि पैदा हो, अच्छे सन्त-महात्मा मिलें, अच्छा संग मिले तो यह सब भगवान्‌की कृपा है! भगवान्‌की कृपाको स्वीकार करनेसे सब काम अपने-आप ठीक होते हैं। भगवान्‌की कृपाकी तरफ दृष्टि भी भगवान्‌की कृपासे ही होती है! इसलिये मेरा सबको कहना है कि आप केवल भगवान्‌की कृपाको मानें, किसी व्यक्तिको नहीं। व्यक्तिका संयोग भी भगवान्‌की कृपासे ही होता है। मनुष्यशरीर भी भगवान् कृपा करके देते हैं—

कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

(मानस, उत्तर० ४४। ३)

'बिना ही कारण स्नेह करनेवाले ईश्वर कभी विरले ही दया करके इसे मनुष्यका शरीर देते हैं।'

भगवान्‌की कृपा बिना हेतु होती है। जो हेतुसे होती है, वह कृपा नहीं होती, प्रत्युत उसमें पुण्य कारण होता है। हमारे किसी पुण्यसे कृपा नहीं होती। जो पुण्यसे हो, उसमें कृपा क्या हुई? इसलिये मनुष्यशरीरमें जो भी अच्छी बात होगी, वह कृपासे ही होगी, अपने पुरुषार्थसे नहीं।

करी गोपाल की सब होइ।
जो अपनौं पुरुषारथ मानत, अति झूठो है सोइ॥

(सूर-विनयपत्रिका २७६)

मनुष्यशरीर मिला, उसमें भी सत्संग मिला, सत्संगमें भी अच्छी बातें मिलीं—यह सब भगवान्‌की अलौकिक, विचित्र कृपा है! इसलिये सब भाई-बहनोंको सदा ही भगवान्‌की कृपाका सहारा रखना चाहिये, कृपाका ही आश्रय लेना चाहिये, कृपाकी तरफ ही दृष्टि रखनी चाहिये। ब्रह्माजीके वचन हैं—

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो
भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते
जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक्॥

(श्रीमद्भा० १०। १४। ८)

'जो मनुष्य प्रतिक्षण आपकी कृपाको ही भलीभाँति देखता रहता है और प्रारब्धके अनुसार जो कुछ सुख-दुःख प्राप्त होता है, उसे निर्विकार मनसे भोग लेता है तथा जो मन, वाणी तथा शरीरसे आपको नमस्कार करता रहता है, वह वैसे ही आपके परमपदका अधिकारी हो जाता है, जैसे अपने पिताकी सम्पत्तिका पुत्र।'

इसलिये अपनी दृष्टि हरदम कृपाकी तरफ ही रखें। इससे बहुत विलक्षणता होगी, आश्चर्यजनक कार्य होगा! अपनेपर कितनी अलौकिक कृपा है, इसको हम अपनी बुद्धिसे जान नहीं सकते। हमारी बुद्धिमें इतनी ताकत नहीं है, जो भगवान्‌की अलौकिक कृपाको समझ सके। परिणाम सामने आनेपर ही चेत होता है कि यह भगवान्‌ने कृपा की! हम विचार करके देखें तो हम उस कृपाके योग्य नहीं हैं। परन्तु वास्तवमें कृपा अयोग्यपर ही होती है। योग्यपर कृपा किस कामकी?

भगवान्‌की कृपा समझमें नहीं आती। अगर समझमें आ जाय तो स्वतः-स्वाभाविक ही कल्याण हो जाय! इसलिये मेरा सबसे कहना है कि भगवान्‌की कृपा मानकर प्रसन्न रहो। अनुकूल-से-अनुकूल परिस्थितिमें भी भगवान्‌की कृपा है, और विपरीत-से-विपरीत परिस्थितिमें भी भगवान्‌की कृपा है। सुखमें भी भगवान्‌की कृपा है और दुःखमें भी भगवान्‌की कृपा है। इन दोनोंमें भी देखा जाय तो दुःखमें विशेष कृपा है!

*** *** ***

एक बार सरल हृदयसे दृढ़तापूर्वक स्वीकार कर लें—

मैं केवल भगवान्‌का ही हूँ, और किसीका नहीं हूँ, तथा केवल भगवान् ही मेरे अपने हैं, और कोई भी मेरा अपना नहीं है।

कारण यह है कि—

शरीर और संसार कभी किसीके साथ रहे ही नहीं, कभी किसीके साथ रहते ही नहीं, कभी किसीके साथ रहेंगे ही नहीं, और कभी किसीके साथ रह सकते ही नहीं।

परमात्माने कभी किसीका साथ छोड़ा ही नहीं, कभी किसीका साथ छोड़ते ही नहीं, कभी किसीका साथ छोड़ेंगे ही नहीं, और कभी किसीका साथ छोड़ सकते ही नहीं।

—ये बातें मामूली नहीं हैं। इनमें बहुत भाव भरा हुआ है! थोड़ेमें बहुत विचित्र भाव आ गया है! कृपा करके इन बातोंको स्वीकार करो। इसमें अभ्यासकी जरूरत नहीं है। एक बार सरल हृदयसे दृढ़तापूर्वक स्वीकार कर लो, दो बारकी जरूरत ही नहीं है। इनको स्वीकार कर लो तो सब-के-सब जीवन्मुक्त हो सकते हैं!! मैंने वर्षोंतक पढ़ाई की है, पर ऐसी बात मिली नहीं! पुस्तकोंमें ऐसी बात आती नहीं!

आपके भीतरमें वह परमात्मतत्त्व है, जो आपको सत्संग, भजन आदि करनेकी प्रेरणा करता है। परन्तु आप उसको आदर न देकर शरीर और संसारको ज्यादा आदर देते हो। विचार करो, आप दूसरा जन्म लेते हो तो इस जन्मका शरीर साथमें चलता है क्या? इस जन्मके माता, पिता, स्त्री, पुत्र आदि दूसरे जन्ममें मिलते हैं क्या? दूसरे जन्ममें नये-नये माता, पिता, स्त्री, पुत्र आदि बनाकर फँस जाते हो! आप स्वयं तो पुराने हो, पर सम्बन्ध नये-नये जोड़ लेते हो। आपने भले ही चौरासी लाख योनियाँ भोग ली हों, पर आप स्वयं शुद्ध-के-शुद्ध ही रहते हो। आपकी शुद्धि मिटती नहीं। आपमें कोई पाप-ताप है ही नहीं। आप स्वतः शुद्ध हो, परमात्माके अंश हो, बेटा-बेटी हो। आपका अन्तःकरण अशुद्ध हुआ है, आप अशुद्ध नहीं हुए हो। अन्तःकरण करण है, कर्ता नहीं है। करणमें आये दोषको आप अपनेमें मान लेते हो! जैसे जिस रंगका चश्मा चढ़ाएँ, वही रंग दीखता है, ऐसे ही आपने दोषका चश्मा चढ़ाया हुआ है, आपमें दोष नहीं है। भीतरसे आप सब शुद्ध, निर्मल हो। आप साक्षात् ईश्वरके अंश हो। ईश्वरमें दोष नहीं है तो उसके अंशमें दोष कैसे होगा?

*** *** ***

श्रोता—आपने कहा कि क्षेत्र और क्षेत्रीमें जो सम्बन्ध है, वह धन और धनीके सम्बन्धके समान नहीं है। जैसे क्षेत्रके सम्बन्धसे 'क्षेत्री' है, ऐसे ही धनके सम्बन्धसे 'धनी' है, फिर दोनों समान कैसे नहीं हैं?

स्वामीजी—दोनोंमें दिन-रातकी तरह बड़ा भारी फर्क है! धनके सम्बन्धसे मनुष्य धनी कहलाता है तो धन तथा धनीकी एक जाति है अर्थात् दोनों ही जड़ हैं। परन्तु क्षेत्री (क्षेत्रज्ञ) जड़ नहीं है, जबकि क्षेत्र जड़ है। क्षेत्री जीव है, जो चेतन है। क्षेत्र प्रकृति है, जो जड़ है।

धनी शरीरका नाम है। आत्माका नाम धनी नहीं है। धनीका तो धनके साथ सम्बन्ध है, पर क्षेत्रीका क्षेत्रके साथ सम्बन्ध नहीं है; क्योंकि क्षेत्रका गुणोंके साथ सम्बन्ध है, जबकि क्षेत्री गुणातीत है, परमात्माका अंश है। इसलिये ज्ञान होनेपर क्षेत्री नहीं रहता। भगवान्‌ने क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके अन्तरको ज्ञानचक्षुसे देखनेको कहा है—

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम्॥

(गीता १३। ३४)

'इस प्रकार जो ज्ञानरूपी नेत्रोंसे क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके विभागको तथा कार्य-कारणसहित प्रकृतिसे स्वयंको अलग जानते हैं, वे परमात्माको प्राप्त हो जाते हैं।'

परन्तु धन और धनी आदमीको ज्ञानचक्षुसे देखनेकी क्या जरूरत है? धन भी जड़ है और धनी भी जड़ है। दोनों एक जातिके हैं।

भगवान्‌ने समझानेके लिये क्षेत्री, देही आदि शब्दोंका प्रयोग किया है। वास्तवमें आत्माका क्षेत्र, देह आदिके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

श्रोता—धन और धनी एक जातिके कैसे हुए? धन अलग है, धनी अलग है!

स्वामीजी—अगर क्षेत्र और क्षेत्री—दोनोंका ज्ञान करोगे तो वहाँ क्षेत्र नहीं रहेगा। इसलिये क्षेत्र और क्षेत्रीके भेदका ज्ञान होनेसे मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है—'**ये विदुर्यान्ति ते परम्**' (गीता १३। १४)। क्या धन और धनीके भेदका ज्ञान होनेसे मोक्षकी प्राप्ति हो जायगी? अतः धन और धनी एक जातिके हैं। धनके कारण ही मनुष्य धनी है। परन्तु क्षेत्रज्ञ क्षेत्रके कारण नहीं है। धनी धनको प्रकाशित नहीं करता; परन्तु क्षेत्रज्ञ क्षेत्रको प्रकाशित करता है—

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत॥

(गीता १३। ३३)

'हे भरतवंशोद्भव अर्जुन! जैसे एक ही सूर्य इस सम्पूर्ण संसारको प्रकाशित करता है, ऐसे ही क्षेत्रज्ञ (आत्मा) सम्पूर्ण क्षेत्रको प्रकाशित करता है।'

भगवान् कहते हैं कि क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका ज्ञान ही मेरे मतमें ज्ञान है—'**क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम**' (गीता १३। २)। क्या धन और धनीका ज्ञान 'ज्ञान' हो जायगा? क्षेत्रज्ञ सम्पूर्ण क्षेत्रोंको प्रकाशित करता है—'**कृत्स्नम्**'। क्या धनी सम्पूर्ण धनको प्रकाशित करता है? धन और धनी तो एक जातिके हैं, पर क्षेत्र और क्षेत्री एक जातिके नहीं हैं। 'क्षेत्री' नाम आत्माका है, पर 'धनी' नाम आत्माका नहीं है। धन नहीं रहेगा तो धनी भी नहीं रहेगा, पर क्षेत्रके न रहनेपर भी क्षेत्री सदा रहेगा।

मैंने जब '**साधक-संजीवनी**' टीका लिखी थी, उस समय इस तरफ मेरी दृष्टि नहीं गयी; अतः

यह विषय इतना स्पष्ट नहीं हुआ था। बादमें 'परिशिष्ट' लिखा तो उसमें यह विषय आया है, पर उसमें भी इतना स्पष्ट नहीं हुआ, जितना अभी प्रश्न करनेसे हुआ है। ऐसा कई श्लोकोंमें हुआ है! विषयको जाननेके लिये आप जितनी शंका करोगे, उतना ही विषय स्पष्ट होगा।

एक सन्त थे। उन्होंने कहा कि आपकी '**साधक-संजीवनी**' का विद्वान् आदर नहीं करेंगे। मैंने कहा कि विद्वानोंके लिये मैंने लिखी ही नहीं! मैंने तो साधकोंके लिये ही लिखी है। इसका नाम ही '**साधक-संजीवनी**' है।

भगवान्‌ने साधककी दृष्टिसे 'क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ' कहा है। रोग क्षेत्र (शरीर)-में होता है, पर क्षेत्रके साथ सम्बन्ध माननेके कारण क्षेत्रज्ञ अपनेको रोगी मान लेता है। इलाज रोगीका होता है, आत्माका नहीं। अतः रोग और रोगी तो एक हुए, पर क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ एक नहीं हुए।

*** *** ***

परमात्मा सब जगह परिपूर्ण है—यह बात मैं प्रायः रोजाना कहता हूँ। कहनेका तात्पर्य है कि यह बात बड़ी दृढ़तासे स्वीकार कर लेनी चाहिये कि भगवान् कण-कणमें हैं। वे मन-बुद्धिमें भी हैं, अन्तःकरणमें भी हैं, वृत्तियोंमें भी हैं, स्वयंमें भी हैं! वे परमात्मा सबमें एक समान परिपूर्ण हैं। ऐसे परमात्माको आप अनुभवमें लाना चाहो तो वह अनुभवमें नहीं आता। ऐसा कहा गया है—

हरि से तू जनि हेत कर, कर हरिजन से हेत।
हरि रीझै जग देत हैं, हरिजन हरि ही देत॥

अर्थात् भगवान्‌से तू प्रेम मत कर, भगवान्‌के प्यारे भक्तसे प्रेम कर। इससे सिद्ध होता है कि भगवान्‌से भी बढ़कर भगवान्‌का भक्त है! भगवान् खुद कहते हैं—***'मैं तो हूँ भगतन का दास, भगत मेरे मुकुटमणि'***। भगवान् राजी होते हैं तो बहुत कृपा करके मनुष्यशरीर देते हैं। मनुष्यशरीरमें जीव स्वर्गमें भी जाता है, नरकमें भी जाता है, चौरासी लाख योनियोंमें भी जाता है! परन्तु भक्त राजी होते हैं तो भगवान्‌को देते हैं!

हरि दुरलभ नहिं जगत में, हरिजन दुरलभ होय।
हरि हेर्‍याँ सब जग मिलै, हरिजन कहिं एक होय॥

अगर ध्यान दें तो भगवान् सब जगह हैं, पर सन्त-महात्मा सब जगह नहीं हैं। भगवान् सब जगह परिपूर्ण हैं, पर उनका अनुभव नहीं होता। सन्तको हम सब जगह परिपूर्ण न मानकर एकदेशीय मानते हैं। वास्तवमें भगवान् और सन्त तत्त्वसे दो नहीं हैं, पर शरीरको लेकर सन्तको एकदेशीय कहते हैं; क्योंकि शरीर व्यापक नहीं है। परमात्मतत्त्वको जाननेवाले सन्तोंका शरीर हमारी तरह ही हाड़-मांसका दीखता है। वास्तवमें हमारे और सन्तोंके शरीरमें फर्क होता है, पर उसको हरेक जानता नहीं!

सन्तोंकी कृपा विशेष है! हमारी समझमें जो बात आती है, वह सन्तोंके द्वारा ही आती है। भगवान् सब जगह रहते हुए भी काम नहीं आते। जैसे, आमके वृक्षमें रस सब जगह रहता है। अगर सब जगह रस नहीं हो तो आमके फलमें रस कहाँसे आया? सब जगह रहते हुए भी फलमें जो विशेषता है, वह आमके टहनी, पत्ते, बोर आदि किसीमें भी नहीं है। सम्पूर्ण वृक्षमें परिपूर्ण होते हुए भी रसका अनुभव फलमें ही होता है। इसी तरह सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मतत्त्वका अनुभव जीवन्मुक्त महापुरुषके द्वारा होता है।

यहाँ 'सन्त' नाम साधुका नहीं है, प्रत्युत भगवान्‌के प्यारे भक्तोंका है। भगवान्‌के भक्त पुरुष-रूपसे भी होते हैं, स्त्री-रूपसे भी होते हैं। वे साधु-रूपसे भी होते हैं, गृहस्थ-रूपसे भी होते हैं। वे ब्राह्मण

भी होते हैं, क्षत्रिय भी होते हैं, वैश्य भी होते हैं, शूद्र भी होते हैं, अन्त्यज भी होते हैं। जैसे आमके फलमें रस मिलता है, ऐसे ही भक्तमें भगवान् मिलते हैं!

एक बड़ी मार्मिक बात है कि सब जगह होते हुए भी भगवान्‌का अनुभव उनकी कृपासे ही होता है। गोस्वामीजी महाराज कहते हैं—

जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदासहूँ।
पायो परम बिश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ॥

(मानस, उत्तर० छं०१३०। ३)

'जिनकी लेशमात्र कृपासे मन्दबुद्धि तुलसीदासने भी परमविश्राम प्राप्त कर लिया, उन श्रीरामजीके समान प्रभु कहीं भी नहीं हैं।'

वह परमविश्राम सब जगह है। ऐसा कोई देश, काल, वस्तु, क्रिया, घटना, परिस्थिति नहीं है, जिसमें परमविश्राम न हो। उसपर सबका हक लगता है। परन्तु उसका अनुभव भगवान्‌की कृपासे होता है।

एक मार्मिक बात है कि हरेक वस्तु उद्योग करनेसे मिलती है, पर परमात्मा उद्योग न करनेसे मिलते हैं! परमात्मा कृपासे मिलते हैं, उद्योगसे नहीं। जैसे, गाय अगर मर जाय तो उसके बछड़ेको दूसरी गायका दूध देते हैं। परन्तु माँके दूधसे बछड़ेमें जो पुष्टि आती है, वह दूसरी गायके दूधसे नहीं आती। कारण कि गाय अपने बछड़ेको चाटती है, प्रसन्न होती है, हुँकार करती है तो उससे जो लाभ होता है, वह अन्य गायके दूधसे नहीं होता। ऐसे ही भगवान्‌की कृपासे, सन्तोंकी कृपासे जो लाभ होता है, वह अन्य साधनसे नहीं होता। परमविश्राम सब जगह है, पर वह प्राप्त सन्तोंके द्वारा होता है; जैसे—आमका रस सम्पूर्ण वृक्षमें रहता है, पर उसका विशेष अनुभव फलमें ही होता है। उसमें मुख्य कृपा भगवान्‌की है। सन्तोंमें कृपा आयी है, पर भगवान्‌में कृपा है। जैसे भगवान् नित्य हैं, ऐसे उनकी कृपा भी नित्य है।

सन्त बताते हैं कि भगवान् सब जगह हैं तो अपनेको उसे दृढ़तासे स्वीकार कर लेना चाहिये। समझमें नहीं आये तो भी मान लो, स्वीकार कर लो। जैसे, माँ समझमें नहीं आती, बाप समझमें नहीं आता, फिर भी माँ-बाप हैं—यह मानना ही पड़ता है। मानना समझसे कमजोर नहीं है। कृपा न दीखे तो भी कृपाको मान लो। छोटे-बड़े हरेक भाई-बहनको भगवान्‌की कृपा माननी चाहिये। कृपासे जो चीज मिलती है, वह अपना जोर लगानेसे नहीं मिलती। गायके प्रत्यक्ष प्रेमसे बछड़ेकी जो पुष्टि होती है, वह केवल दूधसे नहीं होती। उसके प्रेममें शक्ति है। ऐसे ही भगवान्‌की कृपामें विलक्षण शक्ति है, जिससे उसका अनुभव होता है। इसलिये एक बार दृढ़तापूर्वक भगवान्‌को तथा उनकी कृपाको स्वीकार कर लो। पहले स्वीकार कर लो, फिर अनुभव हो जायगा।

भगवान्‌ने कहा है कि सबपर मेरी दया, कृपा बराबर है—***'सब पर मोहि बराबरि दाया'*** (मानस, उत्तर० ८७। ४)। बराबर कृपा होनेपर भी अनुभवमें नहीं आती। गायके सब शरीरमें घी रहता है, वृक्षमें सब जगह रस रहता है, पर वह अनुभवमें नहीं आता। ऐसे ही भगवान् सब जगह समान रीतिसे रहते हुए भी अनुभवमें नहीं आते। एक दिन सेठजीके साथ सत्संग हो रहा था। सत्संग करते-करते रात बीत गयी! रातभर सोनेका काम नहीं, सुबह सन्ध्या ही की! वहाँ मैं भी बैठा था। मैंने सेठजीसे पूछा कि यह अनुभव कैसे हो? वे बोले कि अनुभव तो भगवान्‌की कृपासे होगा। मैंने कहा कि भगवान्‌में पक्षपात है कि भक्तपर कृपा करें, औरोंपर न करें? सेठजीने कहा कि हमने कृपा मानी, तुमने मानी

नहीं! तुम कृपा मान लो तो तुम्हारेको भी हो जाय! वह तो सब जगह है। उसमें पक्षपात नहीं है। **सन्तोंका और भगवान्‌का तत्त्व एक ही होता है। वह सब जगह मौजूद है।** परन्तु स्वीकार आप करोगे तो अनुभव होगा।

परमात्मा शुद्धमें, अशुद्धमें, पवित्रमें, अपवित्रमें, दुष्टमें, सज्जनमें सबमें समानरूपसे विद्यमान हैं। इसलिये सबमें हमारे प्रभु हैं—इस प्रकार समबुद्धि होनी चाहिये।

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥

(गीता ६। ९)

'सुहृद्, मित्र, वैरी, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेष्य और सम्बन्धियोंमें तथा साधु-आचरण करनेवालोंमें और पाप-आचरण करनेवालोंमें भी समबुद्धिवाला मनुष्य श्रेष्ठ है।'

जैसे फलमें छिलका होता है, ऐसे भगवत्कृपामें छिलका नहीं है! वह हलवेकी तरह सब जगह विद्यमान है!

*** *** ***

श्रोता—राधा-तत्त्व क्या है?

स्वामीजी—जो सबकी आराध्या हो, सबकी पूजनीया हो, उसको 'राधा' कहते हैं। उसमें खास तत्त्व 'प्रेम' है। राधाजी केवल प्रेमकी मूर्ति हैं। **भगवान् श्रीकृष्णका जो प्रेम है, उस प्रेमके पुंजका नाम 'राधा' है।** लोग राधा-कृष्णको स्त्री-पुरुष मानते हैं। वास्तवमें ऐसा नहीं है। श्रीकृष्ण 'भगवान्' हैं और राधाजी भगवान्‌का 'प्रेम' हैं।

राधाजीने गोपियोंको नमस्कार किया कि तुम धन्य हो, तुमने भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन किये हैं! गोपियोंने कहा कि तुम तो रोजाना दर्शन करती हो। राधाजीने कहा कि नहीं, मेरेको दर्शन होते ही नहीं! एक दिन कदम्बकी छायामें भगवान् खड़े थे। राधाजी जल भरने यमुनाजी गयीं तो उन्होंने भगवान्‌को देखा तो देखते ही रह गयीं! गोपियोंने देखा तो आपसमें बोलीं कि आज राधाजीको पकड़ लिया! गोपियोंने राधाजीसे कहा कि तुम तो कहती हो कि मैंने कृष्णको देखा ही नहीं, पर आज देख लिया न? राधाजीने कहा कि सच कहती हूँ, मैंने नहीं देखा! जब मैं देखने लगी तो भगवान्‌के कानका कुण्डल दीखा। उस कुण्डलमें ही मेरी दृष्टि अटक गयी! आगे दृष्टि जाय तो देखूँ! मैं वह कुण्डल ही देखते रह गयी, वहीं मस्त हो गयी, भगवान्‌को देखा ही नहीं! तुम धन्य हो, तुमको भगवान्‌के दर्शन होते हैं!

प्रेम-तत्त्व ही राधाके रूपमें प्रकट हुआ है। जैसे 'कृष्ण' नामसे भगवान् आकृष्ट होते हैं, ऐसे ही 'राधा' नामसे भी भगवान् आकृष्ट होते हैं। भगवान्‌को 'राधा' नाम बड़ा प्यारा लगता है; क्योंकि भगवान् प्रेमके भूखे हैं और राधाजी प्रेमस्वरूपा हैं।

भगवान्‌के प्रेमकी जगह ही संसारका आकर्षण है। जड़, नाशवान्‌का आकर्षण मोह, कामना, आसक्ति है। अगर वह आकर्षण भगवान्‌में हो जाय तो प्रेम हो जाता है। मोह, आसक्ति मिट जाय और भगवान्‌में प्रेम हो जाय—इसका उपाय है भगवान्‌के प्रेममें मस्त होना। 'काम' का नाश करनेकी शक्ति भी प्रेममें है। उपासनाओंसे, साधनोंसे काम नष्ट नहीं होता। काम नष्ट होता है भगवान्‌में आकर्षण, प्रेम होनेसे। जितने भगवान् प्यारे लगेंगे, उतना काम नष्ट हो जायगा।

स्त्री-पुरुषका संग ही 'काम' नहीं है, प्रत्युत कोई भी नाशवान् वस्तु प्यारी लगती है तो वह

'काम' है। मनुष्य मकान बनाता है, उसको सजाता है, सुन्दर बनाता है तो यह सब काम है। यह काम ही प्रेममें बाधक है। भगवान्‌के स्मरणमें, नामजपमें, कीर्तनमें मस्त हो जाय तो प्रेम हो जायगा और काम नष्ट हो जायगा। बिना प्रेमके काम नष्ट नहीं होता। वह प्रेम चाहे भगवान्‌के नाममें हो जाय, चाहे भगवान्‌के धाममें हो जाय, चाहे भगवान्‌की लीलामें हो जाय, चाहे भगवान्‌के चरित्रोंमें हो जाय तो काम नष्ट हो जायगा। भगवान् मेरे हैं—इस तरह भगवान्‌में आकर्षण हो जाय। रामायणकी समाप्तिमें एक दोहा आता है—

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

(मानस, उत्तर० १३० ख)

'जैसे कामीको स्त्री प्रिय लगती है और लोभीको जैसे धन प्यारा लगता है, वैसे ही हे रघुनाथजी! हे रामजी! आप निरन्तर मुझे प्रिय लगिये।'

यह बड़ा विचित्र दोहा है! कामी पुरुषको जैसे स्त्री प्यारी लगती है, ऐसे मेरेको रघुनाथजी प्यारे लगें, और लोभी पुरुषको जैसे धन प्यारा लगता है, ऐसे मेरेको रामजी प्यारे लगें। तात्पर्य है कि कामीको जैसे स्त्रीका रूप प्यारा लगता है, ऐसे मेरेको रघुनाथजीका रूप प्यारा लगे, और लोभीको जैसे रुपयोंकी गिनती प्यारी लगती है, ऐसे मेरेको राम-नामकी गिनती अर्थात् जप प्यारा लगे। इस प्रकार भगवान्‌के रूप और नाममें प्रेम हो जाय तो काम नष्ट हो जायगा।

अपने प्रेमी भक्तके लिये भगवान् कहते हैं—

वाग्गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं-
रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥

(श्रीमद्भा० ११। १४। २४)

'जिसकी वाणी मेरे नाम, गुण और लीलाका वर्णन करते-करते गद्‌गद हो जाती है, जिसका चित्त मेरे रूप, गुण, प्रभाव और लीलाओंका चिन्तन करते-करते द्रवित हो जाता है, जो बारंबार रोता रहता है, कभी हँसने लग जाता है, कभी लज्जा छोड़कर ऊँचे स्वरसे गाने लगता है और कभी नाचने लग जाता है, ऐसा मेरा भक्त सारे संसारको पवित्र कर देता है।'

जैसे सूर्य जहाँ जाता है, वहाँ प्रकाश हो जाता है, ऐसे ही भगवान्‌का प्रेमी भक्त जहाँ जाता है, वहाँ सबके हृदयमें प्रेम उमड़ने लगता है!

भगवान्‌के स्वरूप, धाम, नाम, लीला, गुण आदि जिस किसीमें मन आकृष्ट हो जाय तो बड़ी सरलतासे 'काम' नष्ट हो जायगा। विचार करनेसे काम नष्ट नहीं होगा। वह विचार ठहरेगा नहीं। काम सब विचारोंको नष्ट कर देगा! बड़े-बड़े विचार, बड़े-बड़े ध्यान, बड़े-बड़े चिन्तन कुछ काम नहीं आयेंगे। पराशरजी एक धीवरकी कन्याके वशीभूत हो गये! कामका सर्वथा नाश प्रेम होनेपर ही होता है।

प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभिअंतर मल कबहुँ न जाई॥

(मानस, उत्तर० ४९। ३)

प्रेमियोंका संग करनेसे तथा भगवत्प्राप्त सन्त-महापुरुषोंका सत्संग करनेसे सरलतासे प्रेमकी प्राप्ति

हो जाती है। हरेक आदमीके लिये सत्संगके समान सरल उपाय कोई नहीं है।

सतसंगत मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला॥

(मानस, बाल० ३।४)

पहले फूल आता है, फिर फल लगता है। रजस्वला स्त्रीको भी 'पुष्पवती' कहते हैं। सब साधन तो फूल हैं और सत्संग फल है!

*** *** ***

श्रोता—आज गुरु-पूर्णिमाका दिन है। प्राय: सत्संगियोंकी इच्छा है कि आप सेठजीके विषयमें कुछ बतायें।

स्वामीजी—जितना 'गीताप्रेस' का प्रचार है, 'कल्याण' मासिक-पत्रका प्रचार है, सत्संगका प्रचार है, यह सब सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका)-की कृपा है! अभी जो यह सत्संग हो रहा है, यह भी सेठजीकी कृपा है! सेठजी एक ऐसे विलक्षण महापुरुष हुए कि उनकी जोड़ीका कोई दीखा नहीं! वे बहुत विलक्षण विभूति थे! उनके द्वारा चलाया सत्संग अब बड़ा ही है, कम नहीं हुआ है। उन्होंने जो भी काम किया, वह विलक्षण हुआ! उन्होंने कई काम किये, उन सबमें वृद्धि हुई। परन्तु संसारमें पारमार्थिक रुचि जितनी इनके द्वारा हुई है, इतनी और किसीके द्वारा नहीं हुई! **प्राचीनकालमें सूतजी तथा शौनकादि ऋषियोंके द्वारा (अठारह पुराणोंकी रचना आदि) जो कार्य हुआ, उसके बाद वैसा कार्य सेठजीके द्वारा हुआ है!** गीताप्रेससे प्रकाशित ग्रन्थोंके द्वारा देश-विदेशमें कितनी सेवा हो रही है! यह सब सेठजीकी कृपा है! सबके मूलमें सेठजी हैं।

मैं भी 'कल्याण' में लेख पढ़कर सेठजीके पास आया। उस समय मैं यह समझता था कि अन्य लेखकोंकी तरह ये भी एक लेखक हैं। मेरेको यह मालूम नहीं था कि गीताप्रेसके उत्पादक, संस्थापक, संचालक सेठजी ही हैं। उनके पास आनेसे मेरेको बहुत लाभ हुआ, और अभीतक हो रहा है! गीताका प्रचार जितना सेठजीने किया, उतना प्रचार करनेवाला मेरे देखनेमें कोई नहीं आया।

सेठजीको पहले सब 'आपजी' कहते थे, पर मैंने उनका नाम 'सेठजी' रखा। 'सेठ' कहनेमें मेरा मतलब 'श्रेष्ठ' से था; क्योंकि उनके समान श्रेष्ठ पुरुष कोई दीखता नहीं था।

सेठजीने कहा था कि गीताके '**यदा यदा हि धर्मस्य०**' (अवतारवाले) श्लोक छोड़कर मैं मेरी तरफसे गीता कह सकता हूँ!! जैसे भगवान्‌ने कहा '**मामेकं शरणं व्रज०**' तो यह मैं भी मेरी तरफसे कह सकता हूँ!! अवतारवाले श्लोककी जगह सेठजी कहते थे—

परित्राणाय साधूनां सेवां कर्तुं च दुष्कृताम्।
धर्मसम्पालनार्थाय सम्भवन्ति कलौ युगे॥

*** *** ***

अपनी स्थिति शरीरमें मानना ठीक नहीं है। शरीर तो एकदेशीय तथा जड़ है। आप एकदेशीय तथा जड़ नहीं हो। **अनन्त ब्रह्माण्ड जिसके अन्तर्गत हैं, उस परमात्मामें आपकी स्थिति है।** यह एक बात इतनी विलक्षण है कि इसकी महिमा कह नहीं सकते! यह असली योग, नित्ययोग है। सभी क्रियाएँ शरीरके द्वारा होती हैं। कर्तृत्व-भोक्तृत्व शरीरमें हैं, स्वयंमें नहीं हैं। अत: कर्तृत्व-भोक्तृत्वका त्याग नहीं करना है, प्रत्युत उनको अपनेमें स्वीकार ही नहीं करना है। कर्ता-भोक्ता तो शरीरमें स्थित होनेसे होता है, जबकि हमारी स्थिति शरीरमें है ही नहीं। हमारी स्थिति तो नित्य-निरन्तर परमात्मामें ही रहती है। यह बहुत बड़ा विश्राम और भगवान्‌का आश्रय है! सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जिसके आश्रित हैं,

उसमें हमारी स्थिति है तो कर्तृत्व कहाँ रहा?

आप परमात्माके अंश हैं। जो गुण परमात्मामें हैं, वे गुण आपमें भी हैं। परन्तु संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करना आपमें नहीं है। जैसे परमात्मा सच्चिदानन्द हैं, वैसे ही आप भी सच्चिदानन्द हैं। परमात्माके अंश होनेसे आपकी स्थिति परमात्मामें ही है, चाहे मानें या न मानें। परन्तु जैसे गायके शरीरमें रहनेवाला घी गायके काम नहीं आता, ऐसे परमात्मामें स्थिति होते हुए भी वह स्थिति काम नहीं आती। आप मान लो तो निहाल हो जाओगे!

स्थूल-सूक्ष्म-कारण शरीर जाननेमें आते हैं, पर परमात्मा जाननेमें नहीं आते। जाननेमें वह चीज आती है, जो छोटी होती है। हाथसे वही चीज पकड़ते हैं, जो हाथसे छोटी होती है। दीवारको हाथसे कैसे पकड़ें? अतः परमात्मा जाननेमें नहीं आते, प्रत्युत माननेमें आते हैं। जानना छोटा और मानना बड़ा होता है। मानना इतना बड़ा है कि अनन्त ब्रह्माण्ड हमारे माननेके अन्तर्गत आ जाते हैं! 'जानना' ज्ञानयोगमें और 'मानना' भक्तियोगमें है। 'करना' कर्मयोगमें है। हम अपने माँ-बापको मानते हैं, जानते नहीं। कार्य कारणको जान नहीं सकता।

सीधी-सादी बात है कि जैसे बालक माँको अपना मानता है, ऐसे आप भगवान्‌को अपना मान लो। बालकको पूछा जाय कि यह तेरी माँ क्यों है? वह यही कहेगा कि बस, मेरी माँ है। आपका प्रश्न आपके पास ही रहा, बालकतक पहुँचा ही नहीं! ऐसे ही आप मान लो कि मेरे भगवान् हैं। भगवान्‌के बिना आप आये कहाँसे?

*** *** ***

श्रोता—जब हम इन्द्रियोंको वशमें करनेका ज्यादा प्रयास करते हैं, तब इन्द्रियाँ विषयोंकी तरफ ज्यादा ही प्रवृत्त होती हैं और हमें असमर्थ बना देती हैं! ऐसी स्थितिमें क्या करना चाहिये?

स्वामीजी—'हे नाथ! हे नाथ!' कहकर भगवान्‌को पुकारना चाहिये। यह असमर्थके लिये बहुत बढ़िया उपाय है। अपनेमें समर्थताका अभिमान होता है तो इन्द्रियोंको वशमें करना बहुत मुश्किल होता है। परन्तु जब अपनेमें असमर्थताका अनुभव होता है, तब हृदयसे पुकार निकलती है।

श्रोता—हमने मान लिया कि हम भगवान्‌के हैं, भगवान् हमारे हैं। अब भय यह लगता है कि हमारे कर्मोंका फल जब हमें भोगना पड़ेगा, तब हमारी क्या दशा होगी!

स्वामीजी—फल भोगनेसे बढ़िया काम होगा! पापका फल भोगनेसे हमारा हित ही होगा, अहित नहीं होगा।

श्रोता—वे कर्मफल माफ नहीं होंगे क्या?

स्वामीजी—हो जायँ तो हो जायँ, पर फल भोगनेसे हमारी कोई हानि नहीं होगी। भगवान्‌से माफी नहीं माँगनी है। माफी माँगना कोई पाप नहीं है, पर माँगनी नहीं है। जैसे कोई किसीके शरण हो जाता है कि मारो या तारो, तुम्हारी मरजी, ऐसे भगवान्‌के शरण हो जाओ कि आपकी जो मरजी हो, वह करो। ऐसा कहकर फिर निश्चिन्त हो जाओ और भजनमें लग जाओ। 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' कहकर भगवान्‌को पुकारो। उनकी कृपासे सब ठीक होगा।

जितने अच्छे-अच्छे सन्त-महात्मा हुए हैं, वे सभी भगवान्‌के शरण होनेसे हुए हैं, अपनी सामर्थ्यसे नहीं हुए हैं। अपनी सामर्थ्यमें अभिमान होता है। अपनेमें असमर्थता, निर्बलताका अनुभव होनेपर हम भगवान्‌की कृपाके अधिकारी हो जाते हैं।

सुने री मैंने निरबल के बल राम।
जब लगि गज बल अपने बरत्यो, नेक सर्‌यो न्‌हिं काम।
निरबल ह्वै बल राम पुकार्‌यो, आये आधे नाम॥

निर्बलका बलवान्‌के साथ सम्बन्ध है। बलवान्‌का बल निर्बलके ही काम आता है। इसलिये निर्बल होकर भगवान्‌को पुकारो।

हूं वंदों जाकूं सदा, सबकी सुणै पुकार।
अज्ज कीट पर्यंत लों, भय भंजन भरतार॥

(करुणासागर ३)

'मैं ऐसे परमात्माकी वन्दना करता हूँ, जो ब्रह्मासे लेकर कीड़ेतक सबकी प्रार्थना सुनता है और उनके कष्टोंको मिटाकर उनका पालन-पोषण करता है।'

जैसे माँका दूध माँके लिये नहीं होता, बालकके लिये ही होता है, ऐसे ही भगवान्‌का बल निर्बलोंके लिये ही है। भगवान् बलका क्या करेंगे? वह भगवान्‌के क्या काम आयेगा? वह निर्बलोंके ही काम आयेगा। अतः भगवान्‌को 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो तो सब काम ठीक हो जायगा।

सच्चे हृदय से प्रार्थना जब भक्त सच्चा गाय है।
तो भक्तवत्सल कान में वह पहुँच झट ही जाय है॥

अपनेको अनाथ मत समझो। हम अनाथ नहीं हैं। प्रभु हमारे मालिक हैं, स्वामी हैं। इसलिये 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो। इस मार्गमें निराश नहीं होना है; क्योंकि मनुष्ययोनिमें जन्म परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही हुआ है।

भगवान्‌के बनाये हुए सब पदार्थ (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र आदि) सम्पूर्ण जीवोंके लिये हैं। वे किसीके लिये हों, किसीके लिये नहीं हों, ऐसा नहीं है। पापी-से-पापी व्यक्तिकी भी जल प्यास बुझाता है, अन्न भूख मिटाता है, वायु श्वास लेने देती है, आदि।

मनि मानिक महँगे किए, सहँगे तृन जल नाज।
तुलसी एते जानिए, राम गरीब नेवाज॥

(दोहावली ५७३)

जिनके बिना हमारा जीवन चल सकता है, वे मणि-माणिक्य भगवान्‌ने महँगे किये हैं। उम्रभर उनके दर्शन न हों तो भी हम जी सकते हैं! परन्तु जिनके बिना हमारा जीवन नहीं चल सकता, वे तृण, जल और अन्न सस्ते किये हैं। जिस वस्तुकी जितनी अधिक आवश्यकता है, वह वस्तु उतनी ही सस्ती है। अन्न-जलके लिये तो जाना पड़ता है, पर श्वास वहीं ले लो, जहाँ बैठे हैं! भगवान्‌की आवश्यकता सबसे अधिक है, इसलिये भगवान् सब जगह परिपूर्ण हैं।

*** *** ***

श्रोता—अभेद और अभिन्नतामें क्या अन्तर है?

स्वामीजी—ब्रह्म (निर्गुण)-के साथ एकता होना 'अभेद' है और ईश्वर (सगुण)-के साथ एकता होना 'अभिन्नता' है। ज्ञानयोगसे अभेद और भक्तियोगसे अभिन्नता होती है। अभिन्नता होनेसे परमप्रेम, प्रतिक्षण वर्धमान प्रेमकी प्राप्ति होती है। परन्तु अभेदमें परमप्रेम, प्रतिक्षण वर्धमान प्रेमकी प्राप्ति नहीं होती। अभिन्नतामें कभी भेद होता है, कभी अभेद होता है, जिससे प्रतिक्षण प्रेम बढ़ता है।

मेरा तो यह कहना है कि आप कोरी बातें मत करो, उसको प्राप्त करो। पहले बातें मत करो। पहले बातें करनेसे आप उसमें राजी हो जाते हो, सन्तोष कर लेते हो कि हमने समझ लिया। यह समझ कामकी नहीं है। उल्टे यह समझ बाधक है! बातें सीखना और अनुभव करना—दोनों अलग-अलग हैं। **सीखनेसे मनुष्य पण्डित (विद्वान्) होता है और अनुभव करनेसे महात्मा होता है।** पण्डितकी बातें सूखी-सूखी होती हैं, और अनुभवीकी बातोंमें रस आता है! प्राय: लोगोंमें सीखनेकी चेष्टा रहती है।

मैंने देखा है कि लोगोंमें ज्ञानकी महिमा ज्यादा है। भक्तिकी महिमा लोग विशेष जानते नहीं! ज्ञानसे मुक्ति होती है और भक्तिसे भगवान्‌की प्राप्ति होती है। संसारसे (दु:खोंसे, जन्म-मरणसे) छूटना मुक्ति है और परमात्माको प्राप्त करना भक्ति है। मुक्ति भक्तिके अन्तर्गत आ जाती है अर्थात् भक्त संसारसे छूटकर परमात्माको प्राप्त कर लेता है। मुक्तिमें अपना उद्योग है और भक्तिमें भगवान्‌की कृपा है।

भगवान्‌के भजनमें, कीर्तनमें, स्मरणमें, चरित्र पढ़नेमें हृदय गद्‌गद होना चाहिये, तब अभिन्नता प्राप्त होती है। **भगवान्‌का भजन करते हुए, नामजप करते हुए, कीर्तन करते हुए, भगवान्‌का चरित्र पढ़ते हुए, भक्तोंका चरित्र पढ़ते हुए जो रस आता है, उस रसमें संसारकी आसक्ति, कामका नाश करने तथा भगवान्‌से अभिन्न करनेकी शक्ति है।** अपने उद्योगसे आसक्ति नहीं मिटेगी। खास बात यह है कि रस पैदा होना चाहिये। रस मिलनेपर साधन करना नहीं पड़ता, साधन होता है। करना 'होने' में और होना 'है' में बदल जाता है। फिर पूर्णता हो जाती है।

*** *** ***

श्रोता—यदि कोई भगवान्‌के दर्शनके लिये प्राण छोड़नेका संकल्प करे कि भगवान् दर्शन देंगे तो ठीक है, नहीं तो मैं प्राण छोड़ दूँगा तो क्या भगवान् दर्शन दे देंगे?

स्वामीजी—प्रेम होगा तो दर्शन देंगे, नहीं तो नहीं देंगे। हठ करनेसे, कोई क्रिया करनेसे, नामजप करनेसे, कीर्तन करनेसे भगवान् दर्शन नहीं देंगे, प्रत्युत भीतरकी लालसा होनेसे दर्शन देंगे।

भूख लगे तो भोजन कर लो, प्यास लगे तो जल पी लो, नींद आये तो सो जाओ, और हरदम भगवान्‌का भजन करो। ऐसा करते-करते दर्शनकी लालसा जाग्रत् होगी तो भगवान्‌के दर्शन हो जायँगे।

श्रोता—भगवत्प्राप्तिके साधनमें यदि परिवारवाले बाधा डालते हों तो परिवारका त्याग कर देनेमें कोई दोष तो नहीं है?

स्वामीजी—वास्तवमें परिवारवाले भगवान्‌के भजनमें बाधा डाल सकते नहीं। आप उनको बताओ मत। भीतरसे ही भगवान्‌को याद करो। भजन प्रकट करनेसे गड़बड़ी होती है। गुप्तरीतिसे भजन करो। सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) वर्षोंतक साधन करते रहे, पर किसीको पता नहीं लगा। लोग अपना पैसा नहीं बताते तो क्या भजन बतानेकी चीज है?

आप सच्चे हृदयसे भगवान्‌में लग जाओ। लोग जानें चाहे न जानें, परवाह मत करो। अपनी तरफसे दिखानेका भाव न हो। सच्ची लगनसे लग जाओ। भूखे-प्यासे मरनेकी जरूरत नहीं है! सच्चे हृदयकी लगनकी जरूरत है कि भगवान्‌के बिना रहा न जाय। भगवत्प्राप्तिमें क्रियाकी प्रधानता नहीं है, भावकी प्रधानता है। भगवान्‌को भीतरका भाव प्यारा लगता है—'**भावग्राही जनार्दन:**'।

*** *** ***

श्रोता—आज प्रात: आपने फरमाया कि व्याख्यान देनेमें, अच्छी बात कहनेमें जो रस आता है, उसका नाम 'काम' है। परन्तु आप यह भी कहते हैं कि कीर्तन करो, भक्त-चरित्र पढ़ो तो उसमें

रस आना चाहिये; उससे प्रेम पैदा हो जायगा। ऐसा कहनेमें आपका वास्तविक आशय क्या है?

स्वामीजी—तात्पर्य है कि मान-बड़ाई, आदर-सत्कार पानेके लिये व्याख्यान देनेमें जो रस आता है, वह बाँधनेवाला है। परन्तु **भगवान्‌का भजन, नामजप, कीर्तन आदि करनेमें जो रस आता है, वह बाँधनेवाला नहीं है, प्रत्युत 'काम' का नाश करनेवाला तथा प्रेम पैदा करनेवाला है।** ये दोनों रस अलग-अलग हैं। अपने सुखके लिये जो रस होता है, वह बाँधनेवाला होता है और दूसरोंके सुखके लिये तथा भगवान्‌के लिये जो रस होता है, वह मुक्ति देनेवाला होता है। स्वार्थ और अभिमानके सहित जो सुख है, वह बाँधनेवाला है।

संसारकी आसक्ति जल्दी नष्ट नहीं होती। वह विचारसे नष्ट नहीं होती, प्रत्युत भगवान्‌के भजनमें रस आनेसे ही नष्ट होती है। ज्ञानमार्गमें भी रस आता है, पर वह तेजीका नहीं होता।

*** *** ***

मेरे मनमें एक बात आ रही है! लोग कहते हैं कि बदरीनारायण जायँ, वृन्दावन जायँ, अयोध्या जायँ, अमुक जगह जायँ। पर कितने दिन जाओगे? मेरेसे पूछते हैं कि वहाँ जाऊँ तो मैं कहता हूँ कि जाओ! मैं कैसे कहूँ कि मत जाओ! पर कितने दिन फिरोगे? उम्र बीत रही है, मौत नजदीक आ रही है! कहीं जानेकी जरूरत नहीं है। एक जगह बैठकर जप करो, भगवान्‌को याद करो। इससे जो शान्ति मिलेगी, वह कहीं जानेसे नहीं मिलेगी! एकदम पक्की बात है! यह बात आपको जँचे तो कर लो। भटकते-भटकते कई जन्म बीत गये। अब भी वही बात कि वहाँ जाऊँ.....वहाँ जाऊँ! समय चला जायगा, मौत आ जायगी, भजन कब करोगे! आप जरा सोचो! आपको क्या जरूरत है जानेकी! याद तो भगवान्‌को करना है। अपने केवल भगवान् हैं। न वृन्दावन हमारा है, न मथुरा हमारी है, न बदरीनारायण हमारा है, न ऋषिकेश हमारा है। एक परमात्मा हमारे हैं। बैठकर उसीको याद करो। अब यह करेंगे, वह करेंगे तो केवल समय बरबाद होगा, और कुछ नहीं! जप करो, ध्यान करो, स्मरण करो, पुस्तक पढ़ो! भगवान्‌में लग जाओ। न कहीं जाना है, न कुछ करना है। बहुत जल्दी काम हो जायगा! इसमें वृन्दावन, अयोध्या आदिका तिरस्कार नहीं है। मैं यह नहीं कहता कि यहाँ बैठ जाओ। आपको वृन्दावन प्यारा लगे तो वृन्दावन जाकर बैठ जाओ। अयोध्या प्यारी लगे तो अयोध्यामें जाकर बैठ जाओ। भटकते-भटकते बहुत वर्ष हो गये, बहुत जन्म बीत गये! अब तो भटकना बन्द करो! जब परमात्माकी ही प्राप्ति करनी है तो फिर क्यों भटको? भटकते फिरोगे तो शान्ति नहीं मिलेगी, पक्की बात है! कोल्हूका बैल उम्रभर घूमता है और वहीं-का-वहीं रहता है!

भगवान्‌को याद करो, जप करो, कीर्तन करो, चिन्तन करो, पाठ करो, प्रार्थना करो; जिसमें मन लगे, वह साधन करो। यह करना 'कुछ नहीं करने' का साधन है। तात्पर्य है कि जप आदि करनेसे 'न करने' की शक्ति आ जायगी। बड़ी शान्ति, बड़ा आनन्द मिलेगा! इसलिये वृन्दावन, अयोध्या आदि जहाँ भी आपका मन लगे, वहाँ जाकर भजनमें लग जाओ। जीते-जी मर जाओ! हमारे लिये संसार मर गया, हम संसारके लिये मर गये! जो जीता ही मर जाता है, वह अमर हो जाता है। जो मर जाता है, वह किसी वस्तुको मेरी कहता है क्या? सिवाय परमात्माके और कोई मेरा था नहीं, है नहीं, होगा नहीं, हो सकता नहीं।

जगह-जगह भटकना बन्द करके आज ही यह विचार कर लो कि मेरेको कहीं जाना नहीं है, मेरा किसीसे मतलब नहीं है, मेरेको तो भगवान्‌की प्राप्ति करनी है तो आज ही शान्ति मिल जायगी! आप जहाँ हैं, वहाँ भगवान् पूरे-के-पूरे हैं। वहीं चरणोंमें फूल चढ़ा दो, वहीं मस्तकपर तिलक कर

दो, वहीं भोग लगा दो!

सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥

(गीता १३। १३)

'वे परमात्मा सब जगह हाथों और पैरोंवाले, सब जगह नेत्रों, सिरों और मुखोंवाले तथा सब जगह कानोंवाले हैं। वे संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित हैं।'

अगर आपको अपना कल्याण करना है तो भटको मत। आपका जहाँ मन लगे, जिस स्वरूपमें मन लगे, जिस धाममें मन लगे, उसीमें आपका हित है। हमें केवल भगवान्‌की प्राप्ति करनी है—यह पक्का विचार कर लो। अब जप करो, ध्यान करो, सब समय सार्थक करो। यह सावधानी रखो कि समय खाली न जाय।

श्रोता—चारों धाम और तीर्थ करनेकी मनमें इच्छा हो तो क्या करें? जायँ कि नहीं जायँ?

स्वामीजी—अगर आपके मनमें है तो जाओ, मना कौन करता है? मैं मना नहीं करता हूँ, बात कहता हूँ। सिद्धान्त यह समझो कि अन्तमें एक जगह बैठकर साधन करना होगा। शरणानन्दजी देशकी आजादीके आन्दोलनमें लग गये। उनके गुरुजीके एक मित्र थे। उन्होंने शरणानन्दजीको स्वराज्य-आन्दोलनमें लगा देखा तो पूछा कि क्या तुम इसके लिये साधु हुए हो? शरणानन्दजीने जवाब दिया कि मैं इसके लिये साधु नहीं हुआ हूँ। देश आजाद हो जाय—इस इच्छाको मैं विचारके द्वारा मिटा नहीं सका, इसलिये इस कार्यमें लग गया। जिस दिन यह इच्छा मेरे मनसे निकल जायगी, उस दिन यह छोड़कर बैठ जाऊँगा। इसी तरह आप घूमनेकी इच्छाको विचारके द्वारा नहीं मिटा सको तो करके मिटा दो। गीतामें आया है—'**आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते**' (गीता ६। ३) 'जो योग (समता)-में आरूढ़ होना चाहता है, ऐसे योगीके लिये कर्तव्यकर्म करना कारण है'। तात्पर्य है कि 'नहीं करने' के लिये कर्म करना है। इसलिये आपके मनमें हो तो खूब जाओ। करनेकी मनमें है तो उसको मनसे निकालनेके लिये जाओ। मनकी निकल जाय तो फिर एक जगह बैठ जाओ।

श्रोता—बिना तीर्थ किये और बिना चारों धाम गये एक जगह बैठकर यदि भजनमें लग जायँ तो कल्याण हो जायगा?

स्वामीजी—कल्याणमें सन्देह ही क्या है! कल्याणके लिये ही बैठे हैं, और किसलिये बैठे हैं? आप जिसके लिये बैठे हैं, वह तो मिलेगा ही! करनेकी मनमें आये जो जरूर करो, जानेकी मनमें आये तो जरूर जाओ। अगर विचारके द्वारा मिटा दो तो बहुत बढ़िया है! कामना मत रखो। केवल 'न करने' के लिये ही करना है। अगर कामना रखोगे तो करनेका राग कभी मिटेगा नहीं! आपका भटकना कभी मिटेगा नहीं! चौरासी लाख योनियाँ भोगनेपर भी तृप्ति नहीं होगी! अतः विचारके द्वारा न मिटे तो करके मिटा दो। मनकी बात निकालनेके लिये ही कर्मयोग है। गृहस्थाश्रम भी इसीके लिये (मनकी निकालनेके लिये) है। परन्तु करना है शास्त्रकी, सन्तोंकी आज्ञाके अनुसार। निषिद्ध कार्य नहीं करना है। एक श्लोक आता है—

उत्तमा सहजावस्था मध्यमा ध्यानधारणा।
कनिष्ठा शास्त्रचिन्ता च तीर्थयात्राऽधमाऽधमा॥

अर्थात् तीर्थयात्रा अधम-से-अधम है। उससे ऊँचा शास्त्रचिन्तन है। शास्त्रचिन्तनसे ऊँची ध्यान-धारणा है; और सबसे ऊँची सहजावस्था है।

मेरे मनमें भी कहनेकी आयी तो कहकर निकाल रहा हूँ!! आप मेरी बात नहीं मानोगे तो मत मानो, पर मैंने तो अपने मनकी निकाल दी!!

*** *** ***

श्रोता—भगवान् सर्वव्यापी हैं। उनके सब जगह कान हैं, नेत्र हैं। परन्तु जब हम उन्हें पुकारते हैं तो वे वापस हमसे क्यों नहीं बोलते?

स्वामीजी—आपके भीतर कूड़ा-कचरा ज्यादा भरा है, प्रेम तो है नहीं! प्रेम होना चाहिये।

श्रोता—परन्तु रामायणमें आया है—***'जन अवगुन प्रभु मान न काऊ'*** (मानस, उत्तर० १। ३)? फिर वे हमारे कूड़े-कचरेको क्यों देखते हैं?

स्वामीजी—शरण होनेपर ही तो!! आप शरण तो होते नहीं! आप सर्वथा शरण हो जाओ, संसारके न रहकर भगवान्‌के हो जाओ तो फिर भगवान् अवगुण नहीं देखेंगे। जैसे विवाह कर देनेपर कन्या ससुरालके गोत्रकी हो जाती है, ऐसे आप भगवान्‌के गोत्रके हो जाओ। अपने-आपको भगवान्‌को दे दो।

*** *** ***

श्रोता—जब मृत्युका समय निश्चित है, श्वास भी निश्चित हैं तो फिर अकालमृत्यु क्या होती है?

स्वामीजी—आत्महत्या करना 'अकालमृत्यु' है। आत्महत्या करनेवालेको एक मनुष्यकी हत्याका पाप लगता है।

श्रोता—हमारे सामने यदि अत्याचार होता हो तो उस अत्याचारका विरोध करना चाहिये या नहीं?

स्वामीजी—आप बलवान् हैं तो उसको मिटा देना चाहिये, नहीं तो उठकर चल देना चाहिये।

श्रोता—जब आत्मा और परमात्मा एक ही हैं तो फिर आत्माको परमात्मासे मिलनेके लिये प्रयास करनेकी आवश्यकता क्या है?

स्वामीजी—संसारमें मोह कर लिया, इसलिये। संसारमें मोह, शरीरमें मोह, मन-बुद्धिमें मोह, मान-बड़ाई, आदर-सत्कारमें, रुपये-पैसे, भोगमें मोह होनेसे परमात्माको भूल गया। इनका मोह छोड़ दो तो सब ठीक हो जायगा। इसलिये कहा है—***'मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला'*** (मानस, उत्तर० १२१। १५)। भगवान्‌ने भी अर्जुनसे पूछा—**'कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय'** (गीता १८। ७२) 'हे धनंजय! क्या तुम्हारा अज्ञानसे उत्पन्न मोह नष्ट हुआ?'। तब अर्जुनने कहा—**'नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत'** (गीता १८। ७३) 'हे अच्युत! आपकी कृपासे मेरा मोह नष्ट हो गया है और मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है'।

आप सब अपनेपर भगवान्‌की कृपा मानो—***'सब पर मोहि बराबरि दाया'*** (मानस, उत्तर० ८७। ४)। अच्छा या बुरा, कैसा ही हो, सबपर भगवान्‌की बराबर दया है। भगवान्‌की दया मानकर भगवान्‌में लग जाओ, सब काम ठीक होगा! आप निमित्तमात्र बन जाओ—**'निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्'** (गीता ११। ३३)। काम होगा भगवान्‌की दयासे! भगवान्‌से कहते रहो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। जैसे बालक वस्तु पानेके लिये माँके पीछे पड़ जाता है, ऐसे भगवान्‌के पीछे पड़ जाओ! बालक माँसे हठ नहीं करेगा तो किससे करेगा?

*** *** ***

श्रोता—परिवारमें रहते हुए अनेक व्यक्तियों तथा वस्तुओंसे स्वाभाविक सम्बन्ध हो जाता है, फिर उनमें आसक्ति हो ही जाती है। वह आसक्ति कैसे मिटे?

स्वामीजी—देखो भाई, सच्ची बात यह है कि भगवान्‌के गुणोंमें, चरित्रोंमें, चिन्तनमें, नामजपमें प्रियता पैदा हो जायगी, उनमें रस आने लगेगा तो आसक्ति मिट जायगी। यह खास उपाय है! जैसे बालककी खिलौनोंमें प्रीति होती है। उसको छोटे-बड़े कागजके और काँचके टुकड़े अच्छे लगते हैं, पर कबतक? जबतक रुपये अच्छे नहीं लगें, तबतक। जब उसको रुपये अच्छे लगेंगे, तब वह कागज और काँचके टुकड़ोंको छोड़ देगा। इसी तरह जब भगवान्‌का गुण, प्रभाव अच्छा लगेगा तो संसारकी प्रीति छूट जायगी। उपाय आप करते रहो, उपायसे आसक्ति नहीं छूटेगी। भगवान्‌में, उनके चरित्रोंमें, भक्तोंके चरित्रोंमें, सत्संगमें जब रस आने लगेगा तो आसक्ति छूट जायगी। भगवान्‌से प्रार्थना करो कि 'हे नाथ! आपके चरणोंमें मेरी प्रीति हो जाय!' उनकी कृपासे आसक्ति छूट जायगी। तात्पर्य है कि बढ़िया वस्तुमें प्रीति होनेसे घटिया वस्तुकी प्रीति स्वतः-स्वाभाविक छूट जाती है।

संसारमें आसक्ति, मोह होनेसे लाभ क्या हुआ? कुछ हाथ लगेगा नहीं! कोई वस्तु मिलेगी नहीं! केवल फँस जाओगे! आप जिसके अंश हो, उसमें प्रीति होनी चाहिये। संसारमें प्रीति (आसक्ति) होगी तो उसका फल होगा—रोना!

श्रोता—घरमें रहते हुए भगवान्‌में प्रेम हो सकता है क्या?

स्वामीजी—आप घरमें रहो, पर आपमें घर नहीं रहना चाहिये। नौका जलमें रहे, पर नौकामें जल नहीं रहना चाहिये। अगर आपमें घर है अर्थात् आपके भीतर मोह पड़ा हुआ है तो साधु होनेपर भी कुछ नहीं होगा! गीताप्रेसमें एक पण्डित रामायणकी कथा करने आये थे। वे कहते थे कि हमारे पिताजी दण्डी स्वामी हो गये। परन्तु जब वे घरपर आते तो बालकोंको गोदीमें लेते, प्यार करते! यह नौकामें जल भर गया! मैं उनसे कहता कि आप साधु हो गये, आपको किसीसे क्या मतलब! आपके लिये ये मर गये, इनके लिये आप मर गये! थूककर फिर क्या चाटना! थूक दिया तो फिर थूक ही दिया!

*** *** ***

जो बातें कही जाती हैं, उनको आप मान लो तो आगे बहुत विलक्षण बातें मिलेंगी! समझ लो तो बढ़िया है ही, पर केवल स्वीकार कर लो तो जो अभी कहनेमें नहीं आतीं, ऐसी नयी-नयी विलक्षण बातें मिलेंगी! आप एक कृपा करो कि जैसा कहा है, वैसा मान लो। केवल स्वीकार कर लो कि हमारी समझमें नहीं आये तो मत आये, पर बात यही है। बहुत विलक्षणता होगी! हमारी समझकी कमी है, पर बात यही सच्ची है। माननेके बाद अपने-आप अनुभव होगा। यह कृपासाध्य बात है, उद्योगसाध्य नहीं है। अभी कृपा है! अभी आप स्वीकार कर लो तो स्वीकार करनेमात्रमें भी बड़ी भारी कृपा है! फिर कृपासे और समझमें आयेगा, और विलक्षणता आयेगी! कम-से-कम आड़ मत लगाओ।

दो बाधाएँ हैं—पदार्थोंका आश्रय और क्रियाओंका आश्रय। वास्तवमें पदार्थ नहीं है, केवल किया-ही-क्रिया है। केवल क्रियाका नाम ही पदार्थ है। उत्पन्न होनेके बाद उत्पत्ति-विनाशके क्रमका नाम ही पदार्थ है। आगे विचार करो तो क्रिया भी नहीं है! यह आप कृपा करके स्वीकार कर लो। आप कैसे ही हों, पढ़े-लिखे हों या अपढ़ हों, योग्य हों या अयोग्य हों, अधिकारी हों या अनधिकारी हों, पापी हों या पुण्यात्मा हों, इसकी परवाह मत करो। सांसारिक पदार्थोंको प्राप्त करनेमें सब स्वतन्त्र नहीं हैं, पर इसमें सब स्वतन्त्र हैं। इतनी बात मान लो। इसमें सब स्वतन्त्र हैं, सब सबल हैं, सब योग्य हैं और सब अधिकारी हैं। हमारी समझमें नहीं आयी, पर बात ऐसी ही है—इतना माननेमें क्या जोर

आता है? इतना मान लो तो स्वतः-स्वाभाविक बहुत विलक्षणता होगी! सब-के-सब जीवन्मुक्त हो जायँगे! यह मेरे घरकी बात नहीं है, भगवान्‌की बात है! ***'जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदासहूँ। पायो परम बिश्रामु'***०। वह कृपा सबपर है! मनुष्यशरीर मिला, उसके बाद यह चर्चा हुई, इसका कुछ आपके मनमें आदर है, यह बहुत ऊँची बात है! हम तो समझते नहीं—यह आड़ आप मत लगाओ। हम समझे नहीं, पर बात यही सच्ची है—इतनी बात आप मान लो। फिर पहले **'वासुदेवः सर्वम्'** होगा, फिर दूसरी सत्ता न रहनेसे **'वासुदेवः'** हो जायगा, **'सर्वम्'** नहीं रहेगा। परन्तु स्वीकार आपको करना है।

तत्त्वज्ञ, जीवन्मुक्त, भगवत्प्रेमी महापुरुषके भीतर जैसे परमात्मा हैं, वैसे-के-वैसे ही परमात्मा आप सबके भीतर हैं! केवल आप स्वीकृति कर लो, वे प्रकट हो जायँगे! किसीको समय कम लगेगा, किसीको ज्यादा लगेगा, यह बात तो है; परन्तु सब-के-सब मुक्त हो जायँगे, इसमें सन्देह नहीं है! केवल स्वीकार कर लो कि बात ऐसी ही है तो आपके भीतर परदा खुल जायगा, दरवाजा खुल जायगा! हमारी समझमें नहीं आयी तो कैसे मानें—यह दरवाजा है। दरवाजा खोल दो तो सब ठीक हो जायगा! यह बड़े भारी लाभकी बात है! किसी जन्ममें मिली नहीं—ऐसी बात है! भगवान्‌की कृपासे होता है तो वह कृपा सबपर है! ***'सब पर मोहि बराबरि दाया'*** (मानस, उत्तर० ८७। ४)। आप आड़ मत लगाओ कि हम समझे नहीं तो कैसे मानें? समझकी प्रतीक्षा मत करो कि समझमें आये तो मानेंगे। इतना आपने मान लिया कि बात यही सच्ची है तो बहुत काम हो गया! दरवाजा खुल गया! समझ वहाँ पहुँचती ही नहीं। प्रकृतिसे अतीत तत्त्वतक समझ कैसे पहुँचे? आप कुछ मत करो, दरवाजा खोल दो। दृढ़तापूर्वक स्वीकार कर लो कि बात ऐसी ही है।

*** *** ***

साधकोंकी अनेक बाधाएँ हैं, पर आज दो बाधाओंपर विचार करते हैं। एक बाधा तो यह है कि 'यह मैं कर नहीं सकता! यह मेरेसे होगा नहीं!' यह बड़ी बाधा है! ऐसा नहीं मानना चाहिये। मनुष्य नहीं करेगा तो कौन करेगा? देवता, पशु-पक्षी, भूत-प्रेत-पिशाच आदि साधन नहीं कर सकते। मनुष्य ही साधन कर सकता है। दूसरी बाधा यह है कि कभी साधन ठीक दीखता है और कभी ठीक नहीं दीखता। कभी अपनी स्थिति अच्छी दीखती है, कभी अपनी स्थिति पहलेकी अपेक्षा गिरी हुई दीखती है। इन दोनों बाधाओंके निराकरणके लिये आज एक बात बताता हूँ।

इस संसारको संसारबुद्धिसे देखनेवाला साधक नहीं हो सकता। साधक वह हो सकता है, जो संसारको भगवान्‌का ही स्वरूप समझे। वास्तवमें संसार परमात्मा ही है—**'वासुदेवः सर्वम्'** (गीता ७। १९)। परमात्मा ही संसाररूपसे प्रकट हुए हैं—ऐसा माननेसे उपर्युक्त दोनों बाधाएँ हट जायँगी। इस बातको आप स्वीकार कर लें कि हम समझें या न समझें, पर यह है परमात्माका ही स्वरूप। **जो दीख रहा है, वह भगवान्‌का स्वरूप है और जो क्रिया हो रही है, वह भगवान्‌की लीला है।** अगर यह बात आप दृढ़तासे मान लें तो आपकी सब बाधाएँ मिट जायँगी।

*** *** ***

पारमार्थिक बातें इतनी विलक्षण हैं कि मनको महान् शान्ति देनेवाली, निहाल कर देनेवाली हैं! जड़ और चेतन दो विभाग हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, ईर्ष्या, द्वेष, दम्भ, पाखण्ड आदि जितनी आसुरी सम्पत्ति है, वह केवल जड़में है, चेतनमें है ही नहीं! अगर इस बातको समझो तो बहुत लाभकी बात है। गीतामें आया है—

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।

शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते॥

(गीता १३। ३१)

'हे कुन्तीनन्दन! यह (पुरुष स्वयं) अनादि होनेसे और गुणोंसे रहित होनेसे अविनाशी परमात्म-स्वरूप ही है। यह शरीरमें रहता हुआ भी न करता है और न लिप्त होता है।'

शरीरमें स्थित हुआ भी स्वयं कर्ता और भोक्ता नहीं है। उसमें कोई विकार नहीं है। चेतन बिल्कुल निर्विकार है। यह बहुत मार्मिक बात है! चेतन-विभाग प्रकाशकी तरह और जड़-विभाग अन्धकारकी तरह है। सब विकार केवल जड़में हैं। जड़का सम्बन्ध स्वयंने माना है—**'अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते'** (गीता ३। २७)। माननेपर भी चेतन-विभागमें विकार है ही नहीं, कर्तृत्व आता ही नहीं—**'नैव किञ्चित्करोति सः'** (गीता ४। २०), **'नैव किञ्चित्करोमीति'** (गीता ५। ८)। यह बहुत गहरी बात है! अगर इस बातको आप समझ लेते तो काम, क्रोध, लोभ आदि कोई अवगुण आपके पास आता ही नहीं। यह इसलिये आता है कि आपने जड़के साथ अपनी एकता मानी है। यह केवल आपकी मान्यता है, आपमें यह है ही नहीं.....है ही नहीं.....है ही नहीं—**'न करोति न लिप्यते'** (गीता १३। ३१)।

आपका स्वरूप प्रकाश है और आसुरी सम्पत्ति अन्धकार है। मान-अपमान, निन्दा-स्तुति, अच्छा-मन्दा, अनुकूल-प्रतिकूल आदि सब जड़में हैं। आपमें एक भी विकार नहीं है। इसको साधक ठीक समझ ले तो आज-अभी मुक्त हो जाय! वास्तवमें आप स्वतः-स्वाभाविक मुक्त हो। मुक्ति होती नहीं है। जो होती है, वह नाशवान् होती है। जो पैदा होता है, वह नष्ट होनेवाला होता है। जिसका संयोग होता है, उसका वियोग होता है। जो आती है, वह जाती है। मुक्ति आती नहीं है, पैदा नहीं होती है।

धन कमानेमें, मान-आदर-सत्कार पानेमें, भोग भोगनेमें सब स्वतन्त्र नहीं हैं; परन्तु परमात्माकी प्राप्तिमें सब स्वतन्त्र हैं, सब समर्थ हैं, सब योग्य हैं, सब अधिकारी हैं। अन्तःकरण शुद्ध होगा, मल-विक्षेप-आवरणदोष दूर होंगे, तब ज्ञान होगा आदि सब फालतू बातें हैं!! पापी भी ज्ञान-प्राप्तिका अधिकारी है!! गीतामें साफ लिखा है—

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि॥

(गीता ४। ३६)

'अगर तू सब पापियोंसे भी अधिक पापी है तो भी तू ज्ञानरूपी नौकाके द्वारा निःसन्देह सम्पूर्ण पाप-समुद्रसे अच्छी तरह तर जायगा।'

अन्तःकरणसे आपका किंचिन्मात्र भी सम्बन्ध नहीं है। अन्तःकरण सूक्ष्मशरीर है। तीनों शरीर प्रकृतिके हैं। सब क्रियाएँ स्थूलशरीरमें हैं, चिन्तन सूक्ष्मशरीरमें है, स्थिरता और समाधि कारणशरीरमें है। आपके स्वरूपमें पाप, दुराचार, दोष है ही नहीं। इसलिये मनुष्यमात्र ज्ञानका अधिकारी है। केवल उसकी लगन होनी चाहिये।

*** *** ***

जैसे पतिको अपना मान लेनेपर कन्याको पतिके सम्बन्धी अपने दीखते हैं, ऐसे ही 'मैं भगवान्‌का हूँ'—ऐसा मान लेनेपर स्वाभाविक ही भगवान्‌के प्रेमी अपने घरके आदमी दीखेंगे। जो भगवान्‌के प्रेमी नहीं हैं, वे भी आदरणीय, पूजनीय हैं, उनसे कोई वैर नहीं है; परन्तु मेरे तो भगवान्‌के भक्त ही हैं।

बाँकुड़ेमें सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका)-के परिवारमें ब्याह होता तो कलकत्तेसे सैकड़ों आदमी जाते! वे उसको अपना ही घर मानते। एक सत्संगियोंका निमन्त्रण होता है, एक कुटुम्बियोंका होता है। परन्तु उनमें कुटुम्बियोंकी अपेक्षा भी सत्संगियोंका निमन्त्रण श्रेष्ठ मानते हैं कि ये हमारे सत्संगी हैं, भगवान्‌की तरफ चलनेवाले हैं। इस तरह आप भगवान्‌को अपना मान लें तो भक्त अपने दीखने लग जायँगे। रामायणमें नवधा-भक्तिके प्रसंगमें आया है—

सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा॥

(मानस, अरण्य० ३६। २)

'सातवीं भक्ति है सम्पूर्ण जगत्‌को समभावसे मुझमें ओतप्रोत (भगवन्मय) देखना और सन्तोंको मुझसे भी अधिक करके मानना।'

तात्पर्य है कि भक्त समानरूपसे सब संसारको भगवत्स्वरूप देखता है, पर भगवान्‌के भक्तोंमें उसका स्वतः-स्वाभाविक अधिक भाव होगा। भक्त सेवा सबकी करेगा, पर अपना कुटुम्बी भगवान्‌के भक्तोंको ही मानेगा। **भगवान्‌में अपनापन होते ही भक्तोंमें अपनापन स्वतः-स्वाभाविक हो जायगा।** जो भगवान्‌में लगा है, वह किसी जातिका हो, अपना कुटुम्बी दीखेगा।

जैसे पतिकी होनेपर कन्याका गोत्र दूसरा हो जाता है, ऐसे ही एक भगवान्‌का हो जानेपर हमारा गोत्र दूसरा हो जायगा। हमें भगवान्‌का नाम प्यारा लगेगा, भगवान्‌का कीर्तन प्यारा लगेगा, भगवान्‌का चरित्र प्यारा लगेगा, भगवान्‌के गुण प्यारे लगेंगे, भगवान्‌के लीला-स्थल प्यारे लगेंगे, भगवान्‌का भजन करनेवाले प्यारे लगेंगे।

*** *** ***

सुषुप्तिमें अहंकार अविद्यामें लीन होता है। हमारा स्वरूप अहंकारके बिना है—इसका अनुभव सुषुप्तिमें सबको होता है। **मनका सर्वथा निरोध भी सुषुप्तिमें ही होता है। कारण कि दूसरी सत्ता रहते हुए मनका निरोध नहीं होता।** योगदर्शनमें चित्तवृत्तिके निरोधको 'योग' कहा है—**'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'** (१। २)। वास्तवमें चित्तवृत्तिका निरोध नहीं होता। गहरी रीतिसे देखनेपर योगदर्शनकी बात ठीक बैठती नहीं है! योगदर्शनके अनुसार जीवन्मुक्त-अवस्था भी ठीक बैठती नहीं है! इस विषयपर सेठजीसे कई बार सुना है और मैंने भी विचार किया है, देखा है। इस विषयमें दो बातें हैं। पहली बात, चित्तवृत्तियोंका निरोध दूसरी सत्ता मिटनेसे होता है। इससे पहले जो निरोध होता है, वह पूरा नहीं होता। दूसरी बात, जीवन्मुक्ति होनेपर क्या अवस्था होती है—इसका स्पष्ट वर्णन योगदर्शनमें नहीं है। ये योगदर्शनकी दो कमियाँ हैं! जिन्होंने योगदर्शनपर टीका लिखी है, उनसे मेरी इस विषयपर बातें हुईं, पर वे भी इसका ठीक उत्तर नहीं दे सके!

अपने तो सरल हृदयसे 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो और भगवान्‌में लग जाओ। अपने उद्धारके लिये भक्तिका मार्ग बहुत बढ़िया है! यह विवेकमार्गसे भी बढ़िया है! परन्तु वर्तमानमें वेदान्तका प्रचार है। वेदान्तके प्रचारसे असली काम नहीं होता। उससे पण्डिताई (विद्वत्ता) तो आ जायगी, पर परमात्माकी प्राप्ति हो जाय—ऐसा हमें नहीं दीखता। इसपर मैंने खूब विचार किया है। इस विषयमें मैंने पढ़ाई भी की है।

भक्तिमें एक ही सत्ता है अर्थात् सब परमात्मा ही हैं—**'वासुदेवः सर्वम्'** (गीता ७। १९); **'सदसच्चाहमर्जुन'** (गीता ९। १९)। वेदान्तदर्शनमें तीन प्रकारकी सत्ता मानी है—प्रातिभासिक, व्यावहारिक और पारमार्थिक। परन्तु साधकको एक पारमार्थिक सत्ता ही माननेकी जरूरत है। प्रातिभासिक और व्यावहारिक

सत्ताको माननेकी जरूरत ही नहीं है। शास्त्रोंमें कई बातें ऐसी हैं, जिनमें साधक उलझ जाता है, जल्दी निर्णय नहीं कर पाता। परन्तु भक्तिमें सब उलझनें मिट जाती हैं।

*** *** ***

श्रोता—मेरेको संस्कृतका ज्ञान नहीं है। अगर गीताके पाठमें अशुद्धि हो जाय तो दोष तो नहीं लगेगा?

स्वामीजी—नहीं लगेगा। आप अपनी तरफसे बढ़िया-से-बढ़िया रीतिसे पढ़ो।

श्रोता—अगर हिन्दीमें गीताका पाठ करें तो परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी क्या?

स्वामीजी—परमात्माकी प्राप्ति तो हो जाय झाड़ू देनेसे, गीता-पाठकी क्या बात है!! **अगर भाव होगा तो झाड़ू देनेसे कल्याण हो जायगा, और भाव नहीं होगा तो वेद पढ़नेसे भी कल्याण नहीं होगा!** यह देखें कि आपकी नीयत क्या है?

*** *** ***

श्रोता—भगवान्‌के प्रति माता, पिता, स्वामी और सखा—इन चारों सम्बन्धोंमेंसे सर्वोत्कृष्ट सम्बन्ध कौन-सा है?

स्वामीजी—जिस सम्बन्धमें आपका मन ज्यादा लगे, जो सम्बन्ध आपको ज्यादा प्यारा लगे, वही सम्बन्ध सर्वोत्कृष्ट है। भगवान्‌के सम्बन्धमें फर्क नहीं है, अपने मनमें फर्क है। जिसमें अपना मन ठीक लग जाय, वही सम्बन्ध ठीक हो जायगा। **जिस सम्बन्धमें आपके मनमें सन्तोष हो जाय कि भगवान् मेरे हैं, वही सम्बन्ध बढ़िया है।** भगवान्‌की तरफसे कोई सम्बन्ध बढ़िया-घटिया है ही नहीं।

दूसरे लोग अपना-अपना सम्प्रदाय बढ़ानेके लिये कहते हैं कि भगवान्‌को यह-यह मानो। परन्तु मेरे विचारसे भगवान्‌के सभी सम्बन्ध बढ़िया हैं। जिस सम्बन्धमें आपका ज्यादा प्रेम हो, ज्यादा स्नेह हो, ज्यादा प्रसन्नता हो, वह सम्बन्ध मान लो। वैष्णवोंमें दास्य, सख्य आदि अनेक सम्बन्धोंमें माधुर्यको श्रेष्ठ माना गया है। हमारे मनमें तो यह बात आती है कि हनुमान्‌जी महाराजकी दास्य-भक्ति माधुर्यसे कम नहीं है! इसलिये आपका मन जिसमें स्वतः-स्वाभाविक लगे, वही सम्बन्ध बढ़िया मानना ज्यादा सुगम पड़ेगा, और उसीमें लाभ ज्यादा होगा। भगवान्‌के सम्बन्धमें कम-ज्यादा है ही नहीं। आगको किसी भावसे छुओ, वह तो जलायेगी ही!

*** *** ***

'पराश्रय' और 'परिश्रम'—यह बन्धन है, और 'भगवदाश्रय' और 'विश्राम'—यह मुक्ति है। इन दोनोंपर विचार करें। सांसारिक पदार्थोंका आश्रय 'पराश्रय' और क्रिया करना 'परिश्रम' है। पदार्थ और क्रिया—ये दोनों प्रकृति है। पदार्थोंकी उत्पत्ति और विनाश होता है। क्रियाओंका आरम्भ और अन्त होता है। पदार्थोंके आश्रयकी जगह 'भगवदाश्रय' और क्रियाओंके आश्रयकी जगह 'विश्राम' आ जाय तो बेड़ा पार है!

कुछ भी न करना 'विश्राम' है। 'कुछ भी न करना' पहले होता नहीं। अतः 'कुछ भी न करने' के लिये पहले खूब भजन, ध्यान, जप, कीर्तन, स्वाध्याय, सत्संग, विचार आदि करो। इनमें रात और दिन लग जाओ। करनेका वेग निकल जायगा तो फिर 'कुछ भी न करना' आ जायगा। परन्तु कामना नहीं होनी चाहिये। कामना रखकर करोगे तो अनन्त युग बीत जानेपर भी करनेका अन्त नहीं आयेगा! जैसे, घाणीका बैल उम्रभर चलता है, पर वहीं-का-वहीं रहता है!

जिसकी उत्पत्ति और विनाश होता है, जिसका आरम्भ और अन्त होता है, जो मिलती और बिछुड़ती

है, जो आती और जाती है, वह वस्तु अपनी नहीं होती। सदा रहनेवाली वस्तु भगवान् है। भगवान्‌की न उत्पत्ति होती है, न विनाश होता है; न आरम्भ होता है, न अन्त होता है; न वे मिलनेवाले हैं, न बिछुड़नेवाले हैं; न आनेवाले हैं, न जानेवाले हैं। उन भगवान्‌का आश्रय ले लो, और कुछ नहीं करना है।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८। ६६)

'सम्पूर्ण धर्मोंका आश्रय छोड़कर तू केवल मेरी शरणमें आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, चिन्ता मत कर।'

यह (भगवदाश्रय) सबसे अत्यन्त गोपनीय श्रेष्ठ साधन है—**'सर्वगुह्यतमम्'** (गीता १८। ६४)।

*** *** ***

श्रोता—आपने कहा कि चिन्तन करनेसे हम परमात्मासे दूर होते हैं। यह बात समझमें नहीं आयी!

स्वामीजी—वास्तवमें सबकी स्थिति परमात्मामें है। अगर चिन्तन करें तो परमात्मामें स्थिति नहीं रहेगी। परमात्मा सब जगह हैं। तीक्ष्ण सूईकी नोक टिके, इतनी जगह भी परमात्मासे खाली नहीं है। अतः उनका चिन्तन करनेसे परमात्मासे दूर होंगे ही। परन्तु यह बात सबके लिये नहीं है। अभी यह बात समझमें नहीं आयेगी। चिन्तन न करनेकी स्थिति पानेके लिये जप, कीर्तन, ध्यान, चिन्तन, सत्संग, स्वाध्याय आदि सब करो, पर मूलमें याद रखो कि परमात्मा सब जगह हैं। जहाँ आप हैं, वहाँ परमात्मा पूरे-के-पूरे हैं। **जहाँ आप 'मैं हूँ' कहते हो, वहाँ आप नहीं हो, परमात्मा हैं। परमात्मा पहले हैं, 'मैं हूँ' बादमें है। तात्पर्य है कि मेरी जगह परमात्मा ही हैं, मैं नहीं हूँ।** 'मैं नहीं हूँ, परमात्मा है'—यह खास बात है। जब यह कह दिया कि **'वासुदेवः सर्वम्'** (गीता ७। १९) 'सब कुछ परमात्मा ही हैं', तो क्या बाकी रहा? यह बात समझमें नहीं आये तो इसको समझनेके लिये नामजप, सत्संग, कीर्तन, प्रार्थना आदि सब करो, पर अन्तमें यहीं पहुँचना है। कारण कि जबतक करनेका वेग है, तबतक यह बात समझमें नहीं आयेगी।

एक बार सरल हृदयसे दृढ़तापूर्वक स्वीकार कर लो कि मैं भगवान्‌का हूँ और भगवान् मेरे हैं। जो परमात्मा सब जगह हैं, उनको आपने अपना स्वीकार कर लिया तो फिर करना क्या बाकी रहा? **सबसे बढ़िया बात भगवान्‌को 'हे मेरे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारना है। अन्तमें 'नाथ' ही रह जायगा, 'मैं' नहीं रहेगा।**

*** *** ***

श्रोता—मन इधर-उधर बहुत भागता है, क्या करें?

स्वामीजी—मन भागता है—यह मनसे दीखता है कि नहीं? अगर नहीं दीखता है तो कैसे कहते हो कि मन भागता है? जिस प्रकाश (ज्ञान)-में मन भागता हुआ दीखता है, वह प्रकाश आप हो। मन आप नहीं हो।

आदमी दीखते हैं तो प्रकाशमें दीखते हैं। आदमी रहें अथवा चले जायँ, उस प्रकाशमें कोई फर्क नहीं पड़ता। पण्डाल आदमियोंसे भर जाय अथवा एक भी आदमी न रहे, प्रकाशमें क्या फर्क पड़ता है? आदमी तो आते-जाते हैं, पर प्रकाश ज्यों-का-त्यों रहता है।

मन लगा और मन नहीं लगा—ये दोनों बातें आप जानते हो। वह जानना आपका स्वरूप है।

मन आपका स्वरूप नहीं है।

आप मनको लगानेकी चेष्टा मत करो, प्रत्युत केवल मनको देखो। आप मनको रोकनेकी चेष्टा करोगे तो वर्षोंतक चेष्टा करनेपर भी नहीं रुकेगा, और देखते रहो तो पट रुक जायगा।

जैसे आप कहते हो 'हमारी घड़ी' तो आप घड़ीसे अलग हुए, ऐसे ही आप कहते हो 'हमारा मन' तो आप मनसे अलग हुए। अतः मन आपका है ही नहीं, भागे तो क्या, नहीं भागे तो क्या!

अगर उपर्युक्त बातें भी समझमें नहीं आयें तो भगवान्‌को 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो। भगवान्‌से प्रार्थना करो कि 'हे नाथ! मेरा मन आपमें लग जाय'।

*** *** ***

जैसे कोई आदमी दूसरे देशमें रहता हो और उसे अपने देशमें जाना है, ऐसे ही यह संसार दूसरा देश है और परमात्माको प्राप्त करना अपने देशमें, अपने घरमें जाना है। जब हम भगवान्‌के ही अंश हैं तो हमारा देश वही हुआ, जो भगवान्‌का है। संसार हमारा देश नहीं हुआ। इसलिये परमात्माको प्राप्त करना हमारे देशमें जाना है, हमारे गाँवमें जाना है, हमारी माँके पास जाना है, हमारे पिताके पास जाना है। वही हमारी असली जगह है।

*** *** ***

श्रोता—बोध हो जाय तो कैसे पता चलेगा कि बोध हो गया?

स्वामीजी—सूर्योदय होनेपर कैसे पता लगे कि सूर्योदय हो गया! बोध होनेपर सब दुःख, दोष, सन्ताप, जलन आदि मिट जाते हैं! महान् शान्ति हो जाती है! सब तरहसे आनन्द हो जाता है! किसी तरहका कोई दुःख नहीं रहता!

श्रोता—संकल्प-विकल्प बहुत होते हैं, जिससे नहीं करनेकी सामर्थ्य नहीं आ रही है। क्या करूँ?

स्वामीजी—एक बहुत दामी बात है, श्रेष्ठ बात है, उत्तम बात है, बढ़िया बात है, सच्ची बात है, पक्की बात है कि ये संकल्प-विकल्प मनमें होते हैं, आपमें नहीं होते। ये होते-मिटते दीखते हैं। कोई वस्तु आँखके बहुत नजदीक होनेपर भी नहीं दीखती और बहुत दूर होनेपर भी नहीं दीखती, बीचमें होनेपर दीखती है। आपको संकल्प-विकल्प दीखते हैं तो दीखनेवाली वस्तु अलग होती है और देखनेवाला अलग होता है। संकल्प-विकल्प मनमें होते हैं और मन आपसे अलग है, आप मनसे अलग हो। आपमें संकल्प-विकल्प कभी होते ही नहीं.....होते ही नहीं.....होते ही नहीं! '**शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते**' (गीता १३। ३१)। आपने मनको अपना समझ लिया है, यह गलती हुई है। मनको अपना मत समझो।

मनमें संकल्प-विकल्प हों तो उनकी उपेक्षा करो। उनको न अच्छा समझो, न बुरा समझो। उनमें न राग करो, न द्वेष करो। उनका विरोध मत करो। विरोधसे भी सम्बन्ध जुड़ता है और रागसे भी सम्बन्ध जुड़ता है। जैसे रास्तेमें आप चलते हो तो कहीं कूड़ा-कचरा पड़ा है, कहीं पत्थर पड़ा है, कहीं गाय खड़ी है, कहीं सूअर खड़ा है तो अपना उनसे क्या मतलब? इसी तरह संकल्प-विकल्पसे अपना कोई मतलब ही नहीं है। उदासीन हो जाओ। संकल्प-विकल्प होते हैं तो होते रहें। वे मनमें होते हैं, मेरेमें नहीं होते—इस बातपर बार-बार विचार करो। मन अपरा प्रकृति है, आप परा प्रकृति हो। आप भगवान्‌के अंश हो। मन प्रकृतिका अंश है, भगवान्‌का अंश नहीं है।

*** *** ***

एक बहुत बढ़िया बात है! यह शरीर और संसार एक है—

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा॥

(मानस, किष्किन्धा० ११। २)

जैसे शरीर और संसारकी एकता है, ऐसे ही आत्मा और परमात्माकी एकता है। अतः मैं शरीर नहीं हूँ—यह अनुभव करनेके लिये कई बातें हैं। एक बात यह है कि जब हम जन्मे थे तो साथमें कुछ नहीं लाये थे। जब माँसे हमारा जन्म हुआ, उस समय हमारे साथमें कोई वस्तु नहीं थी। परन्तु परमात्मा हमारे साथ थे। परमात्मा सर्वव्यापक हैं तो क्या गर्भस्थ बालकमें परमात्मा नहीं रहते? इसी तरह मरनेपर कोई वस्तु साथमें नहीं जाती। परन्तु परमात्मा साथमें जाते हैं। कारण कि परमात्मा अलग हो ही नहीं सकते। क्या मुर्देमें परमात्मा नहीं रहते? परमात्मा मुर्देमें भी हैं और उसमेंसे निकलकर जानेवाले जीवके साथमें भी हैं। परमात्मा सबमें व्यापक हैं। परन्तु शरीर सर्वव्यापक नहीं है। शरीर तो हमारे सामने बदल गया; बालक, जवान और वृद्ध हो गया; परन्तु क्या आप स्वयं बालक, जवान और वृद्ध हो गये? आप तो परमात्माके साथमें हैं, निर्विकार हैं—**'शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते'** (गीता १३। ३१) 'यह शरीरमें रहता हुआ भी न करता है और न लिप्त होता है'। तात्पर्य है कि कर्तापन-भोक्तापन केवल जड़-विभागमें है, चेतनमें है ही नहीं! आप शरीरके साथ एकता मानकर कर्ता-भोक्ता बन जाते हैं, इसीलिये जन्म-मरण होता है।

वास्तवमें शरीरमें रहता हुआ भी आत्मा तटस्थ है, शरीरके साथ घुलता-मिलता नहीं। अतः हरेक काम करते हुए आप मानो कि 'मैं तटस्थ हूँ' अर्थात् शरीरसे अलग हूँ। यह मार्मिक बात है! जैसे, दो आदमी लड़ते हों तो तीसरा आदमी तटस्थ रहता है। वह उन दोनोंमें किसीके साथमें नहीं है। ऐसे ही आप हरेक काम करते हुए तटस्थ रहें। यह तटस्थ रहना असली विद्या है। तटस्थ रहनेका नाम ही ज्ञान, बोध है।

शरीर माँके पेटमें बना है और मरनेपर मुर्दा यहीं रह जायगा, आप चले जाओगे तो आप शरीरसे अलग हुए। आपका स्वरूप चिन्मय सत्ता है। परन्तु शरीरके साथ एकता मान लेनेके कारण आपको अनेक योनियोंमें जन्म लेना पड़ता है। शरीरके साथ एकता माननेके कारण आपको देवता भी बनना पड़ता है, भूत-प्रेत-पिशाच भी बनना पड़ता है, कुत्ता-गधा भी बनना पड़ता है! इसलिये अपनेको शरीरसे तटस्थ समझो। हरेक शुभ कार्य करते समय यह बात याद रखो कि मैं शरीरसे अलग हूँ। आप हरदम अपने तटस्थ स्वरूपमें रहो। इसको तत्त्वज्ञान कहते हैं।

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते॥

(गीता १३। ३२)

'जैसे सब जगह व्याप्त आकाश अत्यन्त सूक्ष्म होनेसे कहीं भी लिप्त नहीं होता, ऐसे ही सब जगह परिपूर्ण आत्मा किसी भी देहमें लिप्त नहीं होता।'

आप तटस्थ रहो तो अनन्त जन्मोंके सब पाप भस्म हो जायँगे!

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा॥

(गीता ४। ३७)

'हे अर्जुन! जैसे प्रज्वलित अग्नि ईंधनोंको सर्वथा भस्म कर देती है, ऐसे ही ज्ञानरूपी अग्नि सम्पूर्ण कर्मोंको सर्वथा भस्म कर देती है।'

तत्त्वज्ञानके बाद भक्ति है। परमात्माके साथ एकताका अनुभव होना ज्ञान है, और 'भगवान् मेरे हैं, मैं भगवान्‌का हूँ'—यह भक्ति है। मनुष्यजीवन सफल हो गया! इससे बढ़कर बात त्रिलोकीमें नहीं है!!

*** *** ***

अपनी वस्तु क्या है—इसपर विचार करें। जो वस्तु अपनी होती है, वह हमारे साथमें रहती है। जन्में तो भी साथमें रहती है, मरें तो भी अपने साथमें रहती है। विचार करो कि अपने साथ क्या लाये थे और क्या ले जायँगे? कुछ भी साथमें लाये नहीं और कुछ भी साथमें ले जा सकते नहीं। शरीर भी माँके पेटमें बना है और मरनेपर यहीं पड़ा रहेगा। यह इस बातकी पहचान है कि संसारमें अपनी वस्तु कोई नहीं है। सब वस्तुएँ नयी हैं। माँ नयी, बाप नया, भाई नया, स्त्री नयी, लड़का नया, धन नया, घर नया, सब-की-सब नयी-नयी वस्तुएँ हैं। आपकी वस्तु कोई नहीं है.....कोई नहीं है.....कोई नहीं है!

आपकी दृष्टिमें भले ही न हों, पर भगवान् सदा आपके साथ रहते हैं। जो सर्वव्यापक हैं, वे हमारेसे दूर कैसे हो सकते हैं? अगर वे हमारेसे दूर हो जायँ तो उनका सर्वव्यापकपना नष्ट हो जायगा। अत: भगवान् पहले भी साथमें थे, अभी भी साथमें हैं और आगे भी साथमें रहेंगे। वे हमारे साथमें रहे बिना रह सकते ही नहीं! वास्तवमें भगवान् ही अपने हैं। तात्पर्य यह निकला कि भगवान्‌को ही अपना मानें, अन्य किसीको अपना न मानें।

आप यह बात अच्छी तरह समझ लो कि परमात्मा सदासे मिले हुए हैं और कभी बिछुड़ते हैं ही नहीं। वे परमात्मा ही मेरे हैं—यह मान लो तो सदाके लिये निहाल हो जाओगे! ***'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई'***—इस बातको पकड़ लो।

अगर आपको आफत, दु:ख, सन्ताप, जलन चाहिये तो संसारको अपना मानो। अगर शान्ति, आनन्द, मस्ती चाहिये तो भगवान्‌को अपना मानो। संसारको अपना माननेवाला कभी सुखी हो नहीं सकता! क्योंकि संसारकी सब चीजें आपकी हैं ही नहीं। अगर आपकी समझमें नहीं आये तो भी दाँत भींचकर, छाती कड़ी करके भगवान्‌को अपना मान लो!! कारण कि समझमें नहीं आये तो भी बात यही सच्ची है।

*** *** ***

ऐसी बात सुनी है कि जब भगवान् राम लंकापर विजय प्राप्त करके लौटे, तब अयोध्यामें जो उत्सव, आनन्द मनाया गया, उसीको 'दीपावली' कहते हैं। अत: दीपावली आनन्दका, उत्साहका, विजयका त्योहार है। भगवान्‌का भजन, नामजप, कीर्तन, भगवत्स्मरण आदि करके दीपावलीका उत्सव मनाना चाहिये। अपने यहाँ **सनातनधर्मकी खास रीति है कि कोई उत्सव हो तो भगवान्‌का भजन करो, भगवान्‌को याद करो, भगवान्‌का नाम लो, भगवान्‌का चिन्तन करो।**

तीन शक्तियाँ हैं—ब्रह्माजीकी उत्पन्न करनेकी शक्ति है, भगवान् विष्णुकी पालन करनेकी शक्ति है और भगवान् शंकरकी संहार करनेकी शक्ति है। उत्सव मनाना, आनन्द मनाना, हरदम प्रसन्न रहना पालन करनेकी शक्ति है। इसे ही दीवाली, दीपावली अथवा दीपमालिका कहते हैं।

मनुष्यजन्मका उद्देश्य यही है कि फिर जन्म-मरण न हो। सेठजीने भी बड़के नीचे सत्संगमें यही कहा कि तुम दूसरे जन्मको निमन्त्रण मत देना कि हमारा दूसरा जन्म होगा। सब मुक्त हो जायँगे, सबका कल्याण हो जायगा! तुम निमन्त्रण दोगे कि अगले जन्ममें करेंगे तो अगला जन्म होगा, नहीं

तो अगला जन्म होगा ही नहीं!

परमात्माकी कृपासे अपनेको ऐसी बातें मिल रही हैं, जो कि दुर्लभ हैं। साधन करनेवाले सब आदमियोंको ये बातें नहीं मिलतीं। मिलती भी हैं तो वे आश्चर्य करते हैं!

श्रोता—आपकी तो सदा ही दीवाली है और आठों पहर आनन्द है—***'सदा दीवाली संत की, आठों पहर आनन्द';*** परन्तु हमलोग सालमें एक बार दीवाली मनाते हैं और कभी-कभी आनन्दमें रहते हैं! आपसे प्रार्थना है कि हमलोग भी सदा दीवाली मना सकें और आठों पहर आनन्दमें रह सकें, ऐसा कोई उपाय बतायें।

स्वामीजी—उपाय है—भगवान्‌के शरण हो जाओ। भगवान्‌के चरणोंके शरण हो गये तो सदा दीवाली है! दिन-प्रतिदिन नया-नया आनन्द होगा—**'दिने दिने नवं नवं नमामि नन्दसम्भवम्'** (श्रीकृष्णाष्टकम् ५)!!

*** *** ***

बहुत आनन्दकी बात है कि आज दीवालीका राम-राम है! सबको प्रेमसे राम-राम! मेरे मनमें एक बात है कि अपने यहाँ जितने भाई-बहन हैं, सबके हृदयमें वास्तविक प्रकाश हो जाय! और यह बहुत सुगमतासे हो सकता है। स्त्री-पुरुष, छोटे-बड़े, बूढ़े-जवान सबके हृदयमें प्रकाश हो सकता है—ऐसा दीखता है। भीतरका अन्धकार दूर हो जाय—यही असली दीपमालिका होगी! मेरी एक कमी है कि मेरेको अभीतक ऐसा विश्वास नहीं हुआ है कि सब-के-सब ठीक हो गये। यह कमी मेरेको दीखती है, वास्तवमें कमी नहीं है। कारण कि परमात्मा सबको प्राप्त हैं। जब हम कहते हैं कि परमात्मा सब जगह परिपूर्ण हैं तो क्या मैं-तू-यह-वहमें, कण-कणमें परमात्मा नहीं हैं? साध्य साधकको कैसे छोड़ सकता है? और साधक साध्यको कैसे छोड़ सकता है? साध्य साधकको लेकर ही होता है और साधक साध्यको लेकर ही होता है। वास्तवमें दोनोंमें एकता होती है।

विचारके द्वारा यह ठीक दीखता है कि जो सत्संग करनेवाले हैं, वे मामूली पुरुष नहीं हैं। यह मैं हृदयसे कहता हूँ। सब आदरणीय हैं, सब पूजनीय हैं, सब श्रेष्ठ हैं! सबके हृदयमें परमात्मा विराजमान हैं। सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका)-ने बड़के नीचे एक बड़ी विचित्र बात कही थी कि सबको काममें लेना है, इसलिये सबको मालूम नहीं होता! परन्तु फिर महात्मा हो जायगा! सब मुक्त हैं! अभी कुछ काम लेना है। एक बात और कही थी कि मेरी आपलोगोंसे प्रार्थना है कि अगले जन्मको निमन्त्रण मत देना। हमारा दूसरा जन्म होगा—ऐसा निमन्त्रण मत देना। इस बातके अनुसार क्या सिद्ध हुआ? वही बात मैं कहता हूँ कि सेठजीकी बातको याद करो। फिर हमारा जन्म होगा—ऐसा मत मानना! प्राय: जन्म होगा ही नहीं! हम सब-के-सब मुक्त हैं। कई भाइयोंकी, कई बहनोंकी ऐसी बात है कि जो सत्संगमें आ गये, उनका कल्याण हो गया! तीसरी एक बात और याद आ गयी। सेठजीने कहा कि जो अपनी बात माने, उसको तुम ला करके सत्संगमें बैठा दो। इतना काम तुम करो। जो सत्संगमें आ गया, उसका कल्याण हो गया!

सेठजीका भाव बहुत विलक्षण, उदार था। उनसे कइयोंने पूछा कि दो-तीन दिन बरात रहती है तो उसमें लोग उकता जाते हैं, पर (गीताभवनमें सत्संगके लिये) आप सैकड़ों आदमियोंके लिये रहनेके लिये इतना सामान इकट्ठा करते हैं, खाद्य-पदार्थ, शुद्ध घी आदिकी व्यवस्था करते हैं, फिर भी आपमें उत्साह रहता है, क्या बात है? सेठजीने उत्तर दिया कि एक पारमार्थिक तत्त्व (आनन्द, लाभ) है, उसका मेरेको कुछ पता है, मैं चाहता हूँ कि सब-के-सब वे लाभ ले लें! इसलिये यह सब उद्योग

करता हूँ। सेठजी सन्त-महापुरुष थे! उनका उद्योग विलक्षण था! कितने वर्षोंसे सत्संग चल रहा है, यह केवल सेठजीके भीतरकी भावना है! भाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)-ने कई बार कह दिया कि मेरा एकान्तमें जाकर रहनेका विचार है, प्रचार तो भगवान्‌की कृपासे होगा। सेठजीने कहा कि ऐसा नहीं है, भगवान्‌का प्रचार करनेका काम भक्तोंका है, भगवान्‌का नहीं है। यह मेरे सामनेकी बात है।

मैंने सेठजीसे कई बातें पूछीं। एक बात यह पूछी कि शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, वल्लभाचार्य, चैतन्यमहाप्रभु आदि कई आचार्य हुए हैं, आप किस आचार्यको मानते हैं? सेठजीने कहा कि मैं वेदव्यासजीको मानता हूँ। एक बार मैंने कहा कि आप इतनी ऊँची गहरी-गहरी बातें कहते हैं, क्या आपके मनमें यह जँचता है कि हमलोग उनके पात्र, अधिकारी हैं? सेठजीने कहा कि मेरी बातें आकाशमें रहेंगी, जो अधिकारी होगा, उसको मिल जायँगी! सेठजीके हृदयमें लगन थी कि सबका कल्याण हो। हरेकमें यह लगन नहीं होती। सेठजीकी बातोंसे मालूम होता है कि हम बड़े भाग्यशाली हैं कि इस सत्संगमें सम्मिलित हुए हैं! अपने जितने सत्संगी हैं, बहुत श्रेष्ठ हैं, बहुत पूजनीय हैं, बहुत आदरणीय हैं!

संसारका स्वरूप है—वस्तु और क्रिया। वस्तुकी जगह वस्तुको मत मानो, प्रत्युत भगवान्‌को मानो कि यह सब भगवान् हैं.....भगवान् हैं.....भगवान् हैं! क्रियाकी जगह विश्रामको मानो कि कुछ नहीं करना है! उस कुछ नहीं करनेके लिये आप रात-दिन प्रेमपूर्वक नामजप, कीर्तन, ध्यान, सत्संग, स्वाध्याय, गीता-रामायण आदिमें लगे रहो, जिससे कुछ नहीं करना ठीक समझमें आ जाय। सबको वह प्रकाश मिल जाय।

असली दीपमालिका तब होगी, जब सबके हृदयमें यह प्रकाश हो जाय कि सब भगवान् हैं—**'वासुदेवः सर्वम्'** (गीता ७। १९)। जो वस्तु है, वह भगवान्‌का स्वरूप है और जो क्रिया हो रही है, वह उनकी लीला है।

*** *** ***

कर्तव्यका, धर्मका आश्रय कर्मयोग है। 'स्व' का आश्रय ज्ञानयोग है। भगवान्‌का आश्रय भक्तियोग है। इन तीनोंमें भक्तियोग सबसे श्रेष्ठ है; क्योंकि मूलमें सब परमात्मासे ही पैदा हुए हैं, परमात्माके ही अंश हैं—**'ममैवांशो जीवलोके'** (गीता १५। ७); ***'ईस्वर अंस जीव अबिनासी'*** (मानस, उत्तर० ११७। १)। जब हम ब्राह्मण, क्षत्रिय आदिके घरमें जन्म लेते हैं, तब धर्मका आश्रय होता है। इसलिये गीतामें चारों वर्णोंके अलग-अलग धर्म बताये हैं। परन्तु परमात्माके हम पहलेसे हैं। अतः ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र भी मूलमें परमात्माके हैं। इसलिये परमात्माका आश्रय सबसे श्रेष्ठ है। धर्मका आश्रय तो वर्णके अनुसार है, पर परमात्माका आश्रय सबके लिये है। परमात्माका आश्रय जन्मसिद्ध है। वर्णधर्म तो शरीर पैदा होनेके बाद हैं, पर भगवान्‌के हम अनादिकालसे हैं। भगवान् सबके माता-पिता हैं।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देव देव॥

(गर्गसंहिता, द्वारका० १२। १९; पाण्डवगीता २८)

'आप ही माता हो, आप ही पिता हो, आप ही बन्धु हो, आप ही सखा हो, आप ही विद्या

हो, आप ही धन हो, हे देवदेव! मेरे सब कुछ आप ही हो।'

इसलिये भगवान्‌की भक्ति सबसे श्रेष्ठ है, और सबके लिये है! कर्मयोग-ज्ञानयोग तो साधन हैं, पर भक्तियोग साध्य है। **प्रत्येक वर्णका अलग-अलग धर्म है, पर भगवान्‌की भक्ति सबका धर्म है। जीव भगवान्‌का अंश है; अतः भक्ति स्वयंका धर्म है। तात्पर्य है कि जीव सबसे पहले ईश्वरका अंश है, ब्राह्मण आदि बादमें हुए हैं। अतः भगवान्‌में लग जाना जीवमात्रका धर्म है।**

मात्र प्राणी ईश्वरके अंश हैं, इसलिये भक्तिमें सबका अधिकार है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अन्त्यज आदि भी भगवान्‌के भक्त हो गये। गजेन्द्र, गीधराज आदि पशु-पक्षी, वृत्रासुर आदि असुर भी भगवान्‌के भक्त हो गये! भक्ति सबके लिये है। इसलिये प्रत्येक मनुष्यको भगवान्‌की भक्तिमें लग जाना चाहिये।

आज जो बात कही, ऐसी बात मैंने उम्रभरमें पहले कभी कही नहीं!! यह गीताजीकी बात है। सार बात यह है कि कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग—इन तीनों योगोंमें भक्तियोग सबसे पहलेका और सबसे श्रेष्ठ है; क्योंकि सबसे पहले माँ-बाप भगवान् हैं, पीछे दूसरे (शरीरके) माँ-बाप मिले हैं। इसलिये हम सबसे पहले भगवान्‌के हैं, ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र तो बादमें हुए हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि तो ब्राह्मणी, क्षत्राणी आदिसे पैदा हुए हैं, पर हम पैदा हुए ही नहीं! हम अनादिकालसे, स्वतः-स्वाभाविक भगवान्‌के हैं—***'ईस्वर अंस जीव अबिनासी'***।

*** *** ***

एक सन्तने पूछा कि जीव परमात्माके साथ मिल जाता है या अलग रहता है? मैंने कहा कि जैसी भक्तकी इच्छा। वह मिलना चाहे अथवा दास होकर सेवामें रहना चाहे, जैसी उसकी इच्छा। भगवान्‌की तरफसे मना नहीं है। भगवान्‌ने सर्वथा स्वतन्त्रता दी है। भक्तकी मरजी है कि मैं भगवान्‌में मिल जाऊँ तो भगवान् कहते हैं कि मिल जाओ! मैं तो दास बनकर सेवामें रहूँगा तो दास बन जाओ! मैं तो सखा बनूँगा तो सखा बन जाओ! मैं तो पत्नी बनूँगा तो पत्नी बन जाओ! मैं तो माँ बनूँगी तो माँ बन जाओ! मैं तो गुरु बनूँगा तो गुरु बन जाओ! भगवान् कहते हैं—**'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'** (गीता ४। ११)।

*** *** ***

आज मेरेसे किसीने पूछा कि क्या करें? तो मैंने कहा कि भगवान्‌में लगे रहो। भगवान्‌का चिन्तन करो, नामजप करो, कीर्तन करो, भगवान्‌की लीलाके पद गाओ, भक्तोंका चरित्र पढ़ो, भगवान्‌का चरित्र पढ़ो, गीता-रामायण पढ़ो, किसी भी प्रकारसे भगवान्‌में लगे रहो। जैसे बेल अथवा लतामें लगा हुआ फल अपने-आप पक जाता है। पकनेके लिये उसको कोई उद्योग नहीं करना पड़ता। वह लतासे लगा रहे, यही उद्योग है। ऐसे ही आप भगवान्‌में लगे रहो। भगवान्‌की कृपासे सब काम अपने-आप ठीक हो जायगा, एकदम सच्ची बात है!

हरि से लागे रहो भाई।
तेरी बिगड़ी बात बन जाई, रामजी से लगे रहो भाई॥

अपनेपर हरदम भगवान्‌की कृपा मानो। हमने किसीको बुलाया नहीं, फिर भी हम जो यहाँ इकट्ठे हुए हैं, यह भगवान्‌की कृपा है! यहाँतक जिस कृपाने पहुँचाया है, वही कृपा आगे पहुँचायेगी! बस, आप लगे रहो।

एक दिनमें कितनी पढ़ाई हुई, इसका पता नहीं लगता; परन्तु बारह महीना पढ़ाई करनेके बाद

पता लगता है कि कितना फर्क पड़ा है। पढ़ाईमें लगे रहो तो जरूर फर्क पड़ता है। मैंने ऐसे कई देखे हैं, जो गीताजीका पाठ करते हैं। पाठ करते-करते भगवान्‌की कृपासे अपने-आप गीताजीका अर्थ आने लगता है! रामायणका पाठ करते-करते अपने-आप रामायणका अर्थ आने लगता है। गीताका पाठ बारह महीना करनेके बाद गीताका अर्थ और तरहका दीखने लगता है! सत्संग करनेसे गीताके भावोंका ज्ञान स्वत:-स्वाभाविक होता है—यह नियम है। इसी तरह भगवान्‌से लगे रहो तो जरूर लाभ होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

आप साक्षात् भगवान्‌के अंश हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार—यह अपरा प्रकृति भगवान्‌की तो है, पर भगवान्‌का अंश नहीं है। यह बात याद रखो कि यह सब भगवान्‌का है, पर भगवान्‌का अंश नहीं है। आप सब-के-सब भगवान्‌के हो और भगवान्‌के अंश हो। अपरा प्रकृति पोली है और आप ठोस हो। इसलिये भगवान्‌में लगे रहना आपका काम है।

*** *** ***

श्रोता—हम गृहस्थ हैं। मनमें एक संशय है कि परमात्माको प्राप्त करनेके लिये शंकर भगवान्, हनुमान्‌जी, गंगा मैया आदि किसकी पूजा करना आवश्यक है?

स्वामीजी—किसीकी भी पूजा करो, एक ही परमात्मा सब जगह व्यापक है। वही सगुण है, वही निर्गुण है, वही साकार है, वही निराकार है। उनमें कोई फर्क नहीं है। आपको जो प्रिय लगे, उसी रूपकी पूजा करो। सब रूपोंमें वही है—'**अनेकरूपरूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे**' (महाभारत, अनुशासन० १४९)। आपका भाव होना चाहिये। अगर आप जगत्‌में भी भगवान् मान लो तो उसमें भी उनकी प्राप्ति हो जायगी!

आदि अंत जन अनँत के, सारे कारज सोय।
जँहि जिव उर नहचो धरै तँहि ढिग परगट होय॥

जहाँ आप निश्चय करो, वहीं भगवान् प्रकट हो जायँगे। भगवान् खम्भेमेंसे प्रकट हो गये! अत: आपका प्रेम जिसमें ज्यादा हो, वही रूप, वही नाम आपके लिये ठीक है। मूलमें परमात्मा एक ही है। अलग-अलग भाषाओंमें उसीको अल्ला, खुदा आदि अनेक नामोंसे कहते हैं।

एक ही पुरुषके लिये किसीने कहा कि मेरे पिताजी ठीक हैं, किसीने कहा कि मेरे दादाजी ठीक हैं, किसीने कहा कि मेरे नानाजी ठीक हैं, किसीने कहा कि मेरे मामाजी ठीक हैं, आदि-आदि। अन्तमें देखा तो वही पिता है, वही दादा है, वही नाना है, वही मामा है, वही भाई है, वही चाचा है! केवल नाते अलग-अलग हैं। इसी तरह भगवान्‌को हम अपनी भावनासे अलग-अलग कहते हैं।

आप परमात्माको व्यापक देखो। वही सब जगह 'है'-रूपसे विद्यमान है। आप सच्चे हृदयसे उनको चाहो। आप किसी रूपमें भगवान्‌को छोटा मत समझो। आप छोटा समझ लेते हैं तो वे आपके लिये छोटे हो जाते हैं—'**ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्**' (गीता ४। ११) 'जो भक्त जिस प्रकार मेरी शरण लेते हैं, मैं उन्हें उसी प्रकार आश्रय देता हूँ'। उनके समान हमारा कोई नहीं है—

उमा राम सम हित जग माहीं। गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं॥

(मानस, किष्किन्धा० १२। १)

'हे पार्वती! जगत्‌में श्रीरामजीके समान हित करनेवाला गुरु, पिता, माता, बन्धु और स्वामी कोई नहीं है।'

वे एक ही भगवान् तुलसीदासजीके राम हैं, नरसीजीके साँवलसाह हैं, मीराबाईके गिरधर गोपाल

हैं! वे अनेकरूपसे सबपर कृपा करते हैं। आप जिस रूपको मानोगे, उसी रूपसे भगवान् प्रकट हो जायँगे। आप प्रतिक्षण मरनेवाले जगत्‌को सच्चा मानते हो—यही बाधा है।

भगवान् भोलेपनकी भी आखिरी हद हैं और चतुराईकी भी आखिरी हद हैं! वे सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म और महान्‌से भी महान् हैं—'**अणोरणीयान्महतो महीयान्**' (कठोपनिषद् १। २। २०, श्वेताश्वतर० ३। २०)। जिस क्षेत्रमें जाओ, उस क्षेत्रमें भगवान् आखिरी हद हैं!

*** *** ***

भगवान्‌की कृपा सबपर समानरूपसे है—'***सब पर मोहि बराबरि दाया***' (मानस, उत्तर० ८७। ४)। सब-के-सब परमात्माको प्राप्त हो सकते हैं। मानवशरीर है ही इसके लिये। अभी मौका है। इस मौकेको निरर्थक जाने नहीं देना चाहिये। भगवान्‌को 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारो और उनके नामका खूब जप करो, कीर्तन करो। ऐसा करो कि करना बाकी रहे ही नहीं! फिर आप चुप (क्रियारहित) हो जाओ। चुप होते ही वहीं परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी! कहीं जानेकी जरूरत नहीं! कोई उद्योग, परिश्रम करनेकी जरूरत नहीं! कारण कि जहाँ आप हो, वहाँ पूरे-के-पूरे परमात्मा हैं।

अगर अभी आप चुप हो जाओ तो या तो नींद आ जायगी या संसारका चिन्तन होने लगेगा। नींद भी न आये और संसारका चिन्तन भी न हो तो चुप होते ही परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी। परन्तु यह तब होगा, जब आप इसके लिये हरदम जप करो, कीर्तन करो, ध्यान करो, कीर्तन करो, सत्संग करो, पुस्तक पढ़ो, भक्तोंका चरित्र पढ़ो, भगवान्‌का चरित्र पढ़ो, 'हे नाथ! हे नाथ!' प्रार्थना करो। जैसे नींद लेनेके लिये परिश्रम नहीं करना पड़ता, अपने-आप नींद आ जाती है, ऐसे ही अपने-आप परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है।

आप 'है' (सर्वव्यापी सत्तामात्र)-में स्थित हो जाओ और कुछ भी चिन्तन मत करो—'**आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्**' (गीता ६। २५)। न निद्रा-आलस्य आये, न संसारका चिन्तन हो। निद्रा आये तो जप, कीर्तन आदि करो। ऐसा मानो कि मैं शरीरमें नहीं हूँ, प्रत्युत 'है' में हूँ। जीते ही मर जाओ अर्थात् किसी भी वस्तुको अपना मत मानो। मरनेके बाद कोई नहीं कहता कि शरीर मेरा है अथवा रुपये आदि मेरे हैं। वह किसी भी वस्तुको अपनी नहीं कहता। जो जीते ही मर जाता है, वह अमर हो जाता है।

वास्तवमें आपकी स्थिति परमात्मामें ही है। केवल अन्यका चिन्तन करनेसे, अन्यकी कामना करनेसे ही परमात्मासे दूर हो रहे हो।

श्रोता—'है' का ध्यान करना ज्ञानमार्गकी साधना है या भक्तिमार्गकी साधना?

स्वामीजी—ज्ञान और भक्ति दोनों ही सिद्ध हो जायँगे। ज्ञान भी हो जायगा, मुक्ति भी हो जायगी, ध्यान भी हो जायगा, योग भी सिद्ध हो जायगा, परमात्मप्राप्ति भी हो जायगी, सब हो जायगा! आप करके देखो तो सही!!

श्रोता—'है' को देखना और '**वासुदेवः सर्वम्**' को देखना—दोनोंमें श्रेष्ठ कौन-सा है?

स्वामीजी—दोनों एक ही हैं। 'है' वासुदेव ही है। वास्तवमें '**सर्वम्**' नहीं है, केवल '**वासुदेवः**' है। इसलिये '**वासुदेवः सर्वम्**' साधन है और 'है' साध्य है। दूसरा चिन्तन हो तो '**वासुदेवः सर्वम्**' है, चिन्तन न हो तो '**वासुदेवः**' है।

*** *** ***

श्रोता—सब कुछ भगवान्‌के अर्पण कैसे करें—यह समझ नहीं आ रहा है!

स्वामीजी—वास्तवमें सब कुछ परमात्माका ही है। संसारमात्र परमात्माकी ही स्फुरणा है। संसारको हम अपना मान लेते हैं—यह हमारी गलती है। इस गलतीको मिटाना है। परमात्माको वस्तु अर्पण करनेका तात्पर्य परमात्माको देना नहीं है, प्रत्युत उस वस्तुमें अपनापन मिटाना है अर्थात् उसको अपना न मानना ही अर्पण करना है।

अपने-आपको भी भगवान्‌के अर्पण कर देना है। कारण कि अपना-आप (स्वयं) भी अपना नहीं है, प्रत्युत ईश्वरका अंश है—***'ईस्वर अंस जीव अबिनासी'!*** जैसे स्वप्नमें सब वस्तुएँ अपनी दीखती हैं, पर जागनेपर अपना कुछ नहीं रहता, ऐसे ही परमात्माके स्वरूपमें जाग जाना है!

सब कुछ भगवान्‌का है, हमारा है ही नहीं—यह मुक्ति है, और भगवान् हमारे हैं—यह भक्ति है।

योगवासिष्ठमें 'मैं' और 'मेरा'—इन दोका त्याग करनेकी बात आती है। मैं तीनका त्याग करनेकी बात कहता हूँ—'मैं', 'मेरा' और 'मेरे लिये'।

*** *** ***

मेरी धारणामें आप सब-के-सब भाग्यशाली हैं, श्रेष्ठ हैं! जो सत्संगमें आते हैं, प्रेमसे सत्संग सुनते हैं, वे मनुष्य मामूली नहीं हैं! भाई हो या बहन हो, बूढ़ा हो, जवान हो या बालक हो, सत्संगमें जो आ गये हैं, वे भाग्यशाली हैं—ऐसा मेरेको दीखता है! परन्तु इतनेसे सन्तोष नहीं करना चाहिये। साक्षात् भगवान् मिलें, उनसे बात करें!! इसलिये आप सच्चे हृदयसे तत्परतासे भगवान्‌में लग जाओ। रात-दिन नामजपमें तत्परतासे लग जाओ। खाली समय मत जाने दो। सुख पायें, दुःख पायें, अनुकूलता मिले, प्रतिकूलता मिले, सब सह लो। अभी समय बहुत बढ़िया मिला है! बातें बहुत बढ़िया मिली हैं! ऐसी बातें हरेकको मिलती नहीं हैं।

आपमेंसे कोई भी भगवान्‌की कृपासे वंचित नहीं है। भगवान्‌की सबपर कृपा है। भगवान् कहते हैं—***'सब मम प्रिय सब मम उपजाए'*** (मानस, उत्तर० ८६। २); ***'सब पर मोहि बराबरि दाया'*** (मानस, उत्तर० ८७। ४)। यह बात सुनते ही मनमें उत्साह होना चाहिये कि ओहो! भगवान् हमें अपना मानते हैं!! भ्गवान्‌की हमारेपर कृपा है!!

मैं एक बात बताता हूँ। आप सब ध्यान देना। जो सत्संगमें आये हैं, उनपर भगवान्‌की विशेष कृपा है! सत्संगकी ऐसी मार्मिक बातें मनमें आती हैं—यह भगवान्‌की कृपाकी पहचान है। हमारी सामर्थ्य नहीं है कि ऐसी बातें कह सकें। ये भगवान्‌की कृपासे आती हैं। आपपर, मेरेपर, सबपर भगवान्‌की विशेष कृपा है! गीतामें आया है—**'मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये'** (गीता ७। ३) 'हजारों मनुष्योंमें कोई एक सिद्धि (कल्याण)-के लिये यत्न करता है'। हमलोग उन हजारोंमें एक हैं! जैसे बालक खेलते हैं तो माँ-बाप देख-देखकर खुश होते हैं, ऐसे ही हम सत्संग करते हैं, मैं कहता हूँ और आप सुनते हैं तो भगवान् देख-देखकर राजी होते हैं!!

*** *** ***

श्रोता—सत्संगमें रहते समय जैसी सात्त्विक वृत्ति रहती है, वैसी सात्त्विक वृत्ति घर जानेपर नहीं रहती! वह वृत्ति स्थायी कैसे रहे?

स्वामीजी—आप ध्यान देकर सुनें। आपने ऐसी धारणा बना ली है कि सत्संगमें वृत्ति ठीक रहती है, अन्य समय ठीक नहीं रहती। यह धारणा ही इसका कारण है! आप समझते हैं कि वैसी वृत्ति न रहनेसे धारणा बनी है, हम कहते हैं कि धारणा करनेसे वैसी वृत्ति नहीं रहती! आप यह धारणा

छोड़ दें। इसका उपाय यह है कि घर जानेपर आप '**साधक-संजीवनी**' पढ़ो। रोजाना घण्टा-डेढ़ घण्टा मन लगाकर '**साधक-संजीवनी**' आदि पुस्तकें पढ़ो तो सत्संग हो जायगा। फिर वृत्ति ठीक हो जायगी, करके देख लो।

सत्संगमें जो बातें सुनो, उनको काममें लाओ। उनकी बेपरवाह मत करो। जब कुसंगका भी असर पड़ता है तो फिर सत्संगका असर क्यों नहीं पड़ेगा? जरूर पड़ेगा। जैसे कपड़छान करनेसे चूर्णका बारीक अंश छनकर भीतर चला जाता है और मोटा अंश बाहर रह जाता है, ऐसे ही सत्संग करनेसे बारीक (सार, ठोस) वस्तु भीतर चली जाती है, वह मिटती नहीं। सत्संगसे लाभ जरूर होता है।

पारस केरा गुण किसा, पलट्या नहीं लोहा।
कै तो निज पारस नहीं, कै बीच रहा बिछोहा॥

*** *** ***

श्रोता—हमारे स्वरूपमें कर्तापन और भोक्तापन नहीं है तो फिर गुणोंके साथ सम्बन्ध कैसे हो गया?

स्वामीजी—आपने सम्बन्ध मान लिया, इसलिये हो गया। आपने एक शरीरके साथ सम्बन्ध मान लिया तो सम्पूर्ण संसारके साथ सम्बन्ध हो गया! कारण कि सब एक धातुके हैं। आप सम्बन्ध मत मानो तो नहीं होगा। एक आदमीने अपनी कन्याका सम्बन्ध कर दिया। अब वह लड़का (दामाद) बीमार हो जाय तो वह वहाँ जाता है। जब सम्बन्ध जोड़ लिया तो फिर जाना ही पड़ेगा। जिससे सम्बन्ध नहीं जोड़ा, वहाँ नहीं जाना पड़ता।

वास्तवमें शरीर-संसारके साथ आपका सम्बन्ध है नहीं, आपने माना है—'**अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते**' (गीता ३। २७) 'अहंकारसे मोहित अन्तःकरणवाला अज्ञानी मनुष्य मैं कर्ता हूँ—ऐसा मान लेता है' और '**नैव किञ्चित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्**' (गीता ५। ८) 'तत्त्वको जाननेवाला सांख्ययोगी 'मैं स्वयं कुछ भी नहीं करता हूँ'—ऐसा माने'। दोनों जगह माननेकी बात आयी है—'**मन्यते**' और '**मन्येत**'।

संसारसे सम्बन्ध आपने माना है, है नहीं। **संसारके साथ सम्बन्ध नहीं है, पर आपने मान लिया। भगवान्‌के साथ सम्बन्ध है, पर आपने माना नहीं।** भगवान्‌से आपका सम्बन्ध है, नहीं मानो तो भी है, नहीं जानो तो भी है। आप छोड़ो तो भी छूटेगा नहीं। भगवान् सर्वसमर्थ होते हुए भी सम्बन्ध नहीं छोड़ सकते, आप क्या चीज हो! आप भगवान्‌से सम्बन्ध स्वीकार कर लो तो अभी बेड़ा पार है!

आपको केवल भगवान्‌की हाँ-में-हाँ मिलानी है। भगवान् कहते हैं—'**ममैवांशो जीवलोके**' (गीता १५। ७) 'जीव मेरा ही अंश है', आप कहो—'हाँ महाराज'! आपके घरका खर्चा इतना ही है! फिर कंजूसी क्यों? आप भगवान्‌के हो ही, केवल आप स्वीकार कर लो। 'हाँ महाराज'—इतना कहने (मानने)-में क्या परिश्रम होता है? क्या खर्चा लगता है? इतनी सस्ती बात हरेक जगह मिलेगी नहीं! कन्याका विवाह करनेमें तो खर्चा लगता है, पर इसमें एक कौड़ीका भी खर्चा नहीं!

*** *** ***

श्रोता—आपने कहा कि सत्संगका, साधनका सुख नहीं लेना चाहिये। परन्तु सुख तो आ ही जाता है! उस सुखसे छूटनेका उपाय क्या है?

स्वामीजी—दस रुपये मिल जायँ तो सौ रुपयोंकी इच्छा होती है, सौ रुपये मिल जायँ तो हजार रुपयोंकी इच्छा होती है, हजार रुपये मिल जायँ तो दस हजार रुपयोंकी इच्छा होती है, तो इसमें

सन्तोष होता है क्या? ज्यों लाभ होता है, त्यों लोभ बढ़ता है—***'जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई'*** (मानस, बाल० १८०। १; लंका० १०२। १)। इसी तरह साधनमें भी लाभ होनेपर लोभ बढ़ना चाहिये कि आगे और मिले, और मिले! साधनका सुख नहीं लेनेका तात्पर्य है कि किसी अवस्था-विशेषमें सन्तोष नहीं करना है, अटकना नहीं है।

सन्तोषस्त्रिषु कर्तव्यः स्वदारे भोजने धने।
त्रिषु चैव न कर्तव्यः स्वाध्याये जपदानयोः॥

(चाणक्यनीतिदर्पण ७। ४)

'अपनी स्त्री, भोजन और धन—इन तीनोंमें तो सन्तोष करना चाहिये, पर स्वाध्याय, जप और दान—इन तीनोंमें कभी सन्तोष नहीं करना चाहिये।'

तात्पर्य है कि प्रारब्धके अनुसार जो मिला है, उसमें सन्तोष करो। सन्तोष नहीं करोगे तो क्या करोगे? दुःख पाओगे! परन्तु नया उद्योग करके आगे उन्नति करनेमें सन्तोष मत करो।

साधनमें, सत्संगमें सुख तो मिलेगा ही, पर जबतक परमात्माकी प्राप्ति न हो, तबतक उसमें सन्तोष मत करो। साधनरूपी गंगामें चलते-चलते जबतक डूब न जाय, तबतक चलता ही रहे! यात्रा करते हुए रास्तेमें मीलका पत्थर आता है, जिससे पता लगता है कि इतने मील आ गये और इतने मील आगे रह गये। जितने मील आ गये, उसमें सन्तोष मत करो तो लक्ष्यतक पहुँच जाओगे। सन्तोष करोगे तो वहीं बैठ जाओगे!

*** *** ***

आपको खास बात बतायें कि **जो परमात्माकी प्राप्ति है, वह अपने घर जाना है, अपने माँ-बापकी गोदीमें जाना है।** यह संसार अपना घर नहीं है। परमात्मप्राप्तिमें परिश्रम नहीं है, प्रत्युत संसारमें रहनेमें परिश्रम है। संसारमें तो परिश्रम है, पर परमात्मामें सदाके लिये परम विश्राम है—***'पायो परम बिश्रामु'***। कारण कि जहाँ आप हो, वहाँ पूरे-के-पूरे परमात्मा हैं! इसलिये जाना कहीं नहीं है। जहाँ आप हैं, वहीं रहो और शान्त हो जाओ।

शान्त होना, कुछ नहीं करना ही परमात्मप्राप्तिका खास उपाय है। यह भगवान्‌की कृपासे ही होगा, अपने उद्योगसे नहीं—***'जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदासहूँ। पायो परम बिश्रामु .....'*** (मानस, उत्तर० १३० छं०)। भगवान्‌की कृपा सबपर है; परन्तु सत्संग करनेवालोंपर, साधनमें तत्परतासे लगे हुए साधकोंपर विशेष कृपा है!

चुप होना, शान्त होना, कुछ न करना अद्वितीय साधन है! बड़ा भारी साधन है! अन्तिम साधन है! यह समाधिसे भी ऊँची चीज है! अगर समझमें आ जाय तो एक भगवान्‌के शरण होकर चुप हो जाओ। इससे भक्ति, ज्ञान, योग सब मिल जायगा। **चुप होने, शान्त होने, कुछ न करनेके लिये ही जप, ध्यान, कीर्तन, प्रार्थना, स्वाध्याय, सत्संग आदि सब करना है। इससे कुछ न करना समझमें आ जायगा।**

क्रियामें सब कुछ नहीं है, पर विश्राममें सब कुछ है! जहाँ कुछ नहीं है, वहाँ सब कुछ है! 'करने' में तो सब अलग-अलग हैं, पर 'न करने' में मूर्ख-से-मूर्ख और विद्वान्-से-विद्वान् सब बराबर हैं! आपकी स्थिति निरन्तर परमात्मामें है। 'करने' से ही परमात्मासे दूर हुए हैं। भटकते-भटकते अपने घरपर आ गये तो अब क्या करना है! एक बार परमविश्रामकी प्राप्ति हो गयी तो वह सदाके लिये हो जायगी।

'हे नाथ! हम तो आपके हैं'—इस भावसे भगवान्‌के चरणोंमें पड़ जाओ और कुछ मत करो।

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
एक राम घन स्याम हित चातक तुलसीदास॥

(दोहावली २७७)

*** *** ***

एक खास बात मैंने बहुत बार कही है और फिर कहता हूँ। बहुत मार्मिक, बढ़िया बात है! मनुष्योंके मनमें प्रायः यह बात जँची हुई है कि हम संसारी आदमी हैं और परमात्माकी प्राप्ति करनी है। वास्तवमें यह बात है नहीं! परमात्माकी प्राप्ति तो अपनेको है। हमने जो भूल की है, वह मिटानी है। हम परमात्माके खास बेटा-बेटी हैं—***'ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥'*** (मानस, उत्तर० ११७। १)। परमात्मा हमारे परम पिता हैं। परन्तु भूलकर हमने शरीर-संसारको अपना मान लिया। आप शरीरको कितना ही अपना मान लो, शरीर नहीं रहेगा.....नहीं रहेगा.....नहीं रहेगा! प्रत्यक्षमें आपका बालकपन नहीं रहा, जवानी नहीं रही, तो क्या वृद्धावस्था रहेगी? शरीर और संसार किसीके साथ कभी रहे नहीं, कभी रहते नहीं, कभी रहेंगे नहीं, कभी रह सकते नहीं। यहाँ कोई भी वस्तु रहनेवाली नहीं है। परन्तु परमात्मा वे-के-वे हैं और आप (स्वयं) भी वे-के-वे हैं! विचार करें, नित्य रहनेवाले परमात्मा और हम हुए या शरीर-संसार हुआ?

हरेक भाई-बहनके हृदयमें यह बात पक्की जम जानी चाहिये कि परमात्माकी प्राप्ति नयी नहीं है, केवल भूल मिटानी है। परमात्मा सदा साथमें थे, सदा साथमें हैं, सदा साथमें रहेंगे, कभी दूर हो सकते ही नहीं। वे सर्वसमर्थ होते हुए भी हमारेको छोड़नेमें असमर्थ हैं! परमात्माके साथ हमारा इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि वे हमारेसे दूर हो सकते ही नहीं और हम उनसे दूर हो सकते ही नहीं। इसलिये परमात्माको प्राप्त करना वैसा है, जैसे बालक अपनी माँकी गोदीमें जाय। बालक अपनी माँकी गोदीमें जा बैठे तो क्या पैसे लगते हैं? क्या कोई फीस देनी पड़ती है? क्या कुछ नया बनना पड़ता है? इसलिये **भगवान्‌की प्राप्ति करना माँकी गोदीमें जाना है।** यह बहुत मार्मिक, बढ़िया बात है!

एक बात और है, जो मैंने पहले भी कही है। चेतानेके लिये उसको फिर कहता हूँ। अपने लिये कुछ करना नहीं है। क्या माँकी गोदीमें जानेके लिये बालकको कुछ करना पड़ता है? पढ़ाई करनी पड़ती है? रुपया इकट्ठा करना पड़ता है? कुछ काम करना पड़ता है? ऐसे ही परमात्माकी प्राप्तिके लिये कुछ करना नहीं है, केवल उनकी गोदीमें जाना है। कुछ करना नहीं है—इसके लिये जप, ध्यान, कीर्तन, सत्संग, स्वाध्याय आदि सब करना है।

आप अपनेको जितना संसारी मानेंगे, उतनी ही (गलत मान्यताको मिटानेके लिये) मेहनत करनी पड़ेगी! भूलको, झूठी बातको तो सही मान लिया और सही बातको छोड़ दिया! इसलिये हरेक भाई-बहनको यह बात दृढ़तासे पकड़ लेनी चाहिये कि हम भगवान्‌के हैं और भगवान् हमारे हैं; हम संसारके नहीं हैं और संसार हमारा नहीं है। **भगवान् हमारे हैं.....हैं.....हैं, और शरीर व संसार हमारा नहीं है.....नहीं है.....नहीं है! यह खास बात आप मान लो तो परमात्माकी प्राप्ति बहुत सुगम हो जायगी!** कठिनता आपकी पैदा की हुई है, कठिनता है नहीं।

एक बहुत मार्मिक बात है! खूब ध्यान देकर सुनो। **संसार और शरीर छूटेगा ही, पर छूटनेसे लाभ नहीं होगा। परन्तु आप छोड़ दोगे तो आपका रोना, चिन्ता, हलचल, दुःख सब मिट जायँगे! आनन्द हो जायगा! आप जीवन्मुक्त हो जाओगे, भगवत्प्रेमी हो जाओगे, योगी हो जाओगे, सन्त-**

महात्मा हो जाओगे! संसार-शरीरको साथ रख सकते नहीं और छोड़ते हो नहीं तो दुःख पाओगे.....पाओगे.....पाओगे!! अगर छोड़ दोगे तो निहाल हो जाओगे.....हो जाओगे.....हो जाओगे!!

*** *** ***

साधकोंको अपनेमें जो-जो कमी मालूम देती हो, जैसे हमारा पदार्थोंके साथमें, क्रियाओंके साथमें, व्यक्तियोंके साथमें सम्बन्ध छूटा नहीं है आदि, तो इसकी उपेक्षा कर दो। तात्पर्य है कि 'यह कमी कैसे छूटे? यह जल्दी छूट जाय'—ऐसी इच्छा मत करो, प्रत्युत उसकी बेपरवाह कर दो। कारण कि वास्तवमें यह है नहीं। हृदयमें यह सिद्धान्त पक्का रखो कि अवगुणोंकी सत्ता है नहीं। उनसे द्वेष करनेसे सम्बन्ध जुड़ता है। जैसे, भगवान् राम वनवासमें गये तो जिन राक्षसोंने उनसे द्वेष किया, उनका भी कल्याण हो गया और जिन्होंने राग किया, उनका भी कल्याण हो गया; परन्तु जिन्होंने न राग किया, न द्वेष किया, उनका कल्याण नहीं हुआ। कारण कि राग और द्वेष दोनोंसे सम्बन्ध जुड़ता है। ऐसे ही अवगुणोंके साथमें द्वेष करोगे तो वे जल्दी छूटेंगे नहीं; क्योंकि उनके साथ सम्बन्ध जुड़ा रहेगा। अतः उनकी उपेक्षा कर दो कि मूलमें ये हैं नहीं। उपेक्षा करनेसे वे जल्दी छूट जायँगे। इस बातको न जाननेके कारण बहुत-से साधक चेष्टा तो अवगुणोंका नाश करनेकी करते हैं, पर होती है अवगुणोंकी मजबूती! राग और द्वेषसे सम्बन्ध जुड़ता है, उपेक्षासे सम्बन्ध टूटता है।

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥

(गीता ३। ३४)

'इन्द्रिय-इन्द्रियके अर्थमें अर्थात् प्रत्येक इन्द्रियके प्रत्येक विषयमें मनुष्यके राग और द्वेष व्यवस्थासे (अनुकूलता और प्रतिकूलताको लेकर) स्थित हैं। मनुष्यको उन दोनोंके वशमें नहीं होना चाहिये; क्योंकि वे दोनों ही इसके (पारमार्थिक मार्गमें) विघ्न डालनेवाले शत्रु हैं।'

नाश उसीका होता है, जो नहीं है और प्राप्ति उसीकी होती है, जो है। अतः जो नहीं है, उसके नाशकी चेष्टा क्यों करें? उसकी उपेक्षा कर दें तो वह अपने-आप छूट जायगा। जितनी उपेक्षा करोगे, उतनी जल्दी छूटेगा। कारण कि वास्तवमें उसके साथ हमारा सम्बन्ध नहीं है। एक कहानी आती है। अँधेरेने ब्रह्माजीके पास जाकर शिकायत की कि 'महाराज, यह सूर्य मेरा पिण्ड नहीं छोड़ता! मेरेको कहीं टिकने नहीं देता!' ब्रह्माजीने सूर्यसे पूछा कि 'तू अँधेरेके साथ क्यों वैर रखता है? क्यों उसके पीछे पड़ा है?' सूर्यने कहा कि 'महाराज, मैंने कभी अँधेरेको देखा ही नहीं!' इसी तरह अवगुणोंके साथ हमारा सम्बन्ध ही नहीं है। हमारा सम्बन्ध भगवान्‌से है। हम स्वतः भगवान्‌के हैं, भगवान् स्वतः हमारे हैं।

दूसरी एक बातपर आप ध्यान दें कि **जो मिलता है और बिछुड़ता है, वह अपना नहीं होता। जो आता है और जाता है, वह अपना नहीं होता। जिसका आरम्भ होता है और अन्त होता है, वह अपना नहीं होता। जिसकी उत्पत्ति होती है और विनाश होता है, वह अपना नहीं होता।** इस बातको याद कर लो, दृढ़तासे मान लो।

*** *** ***

भगवान्‌की कोई विशेष कृपा होती है, तब यह सत्संग मिलता है! सभी भाई-बहनोंको हृदयसे मानना चाहिये कि भगवान्‌की हमारेपर बहुत कृपा है, जो ऐसा सत्संग, कीर्तन सुन रहे हैं! यह मनुष्यकी ताकत नहीं, भगवान्‌की ताकत है।

आप कृपा को आसरो, आप कृपा को जोर।
आप बिना दीखे नहीं, तीन लोक में और॥

जितने अच्छे काम होते हैं, सब भगवान्‌की कृपासे होते हैं।

श्रोता—भगवान्‌की तरफ चलनेके लिये एकनिष्ठा कैसे बनेगी?

स्वामीजी—एकनिष्ठा आपको करनी पड़ेगी। भगवान्‌से विमुख आप हुए हो, भगवान् विमुख नहीं हुए हैं। इसलिये सम्मुख होना आपका काम है। संसारके विषयोंके सम्मुख जीव हुआ है, इसलिये उसको भगवान्‌के सम्मुख होना है। फिर सब काम भगवान् करेंगे।

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

(मानस, सुन्दर० ४४। १)

अगर भगवान्‌के सम्मुख नहीं हो सकते तो भगवान्‌से प्रार्थना करो।

श्रोता—भगवान्‌के लिये हम कभी इधर चलते हैं, कभी उधर चलते हैं, तो एक रास्तेपर कैसे चलें?

स्वामीजी—यह विश्वास रखो कि भगवान्‌की कृपासे होगा। भगवान्‌से 'हे नाथ! हे नाथ!' प्रार्थना करते रहो और चलते रहो। भगवान् कृपा करके शरण ले लेते हैं। जैसे माँ-बाप, अध्यापक धमकाकर, थप्पड़ लगाकर, शासन करके पढ़ाते हैं, ऐसे भगवान् भी धमकाकर, शासन करके शरण ले लेते हैं!

एक विचित्र बात है कि भगवान्‌से विमुख होनेमें हमारी ही बेईमानी है; परन्तु सम्मुख होनेमें भगवान्‌से सहायता माँगो तो वे सहायता करते हैं। **विमुख होनेमें तो हमारा हाथ है, पर सम्मुख होनेमें भगवान्‌का हाथ है!** जैसे, कोई आदमी सरकारी खजानेमें रुपया जमा करना चाहता है तो सरकारकी तरफसे सहायता मिलती है; परन्तु चोरी करना चाहता है तो सहायता नहीं मिलती। आप बेठीक अपनी मरजीसे होते हैं और ठीक भगवान्‌की मरजीसे होते हैं। इसका नाम कृपा है!

*** *** ***

श्रोता—भगवान्‌के सम्मुख होनेका अर्थ क्या है?

स्वामीजी—यह बताओ कि आपके मनमें संसार मुख्य है या भगवान् मुख्य हैं? **भगवान्‌के सम्मुख होना तभी माना जायगा, जब संसारके सुख तथा दुःखका असर कम पड़े और भगवान्‌का भजन छूटनेका दुःख ज्यादा हो।** तात्पर्य है कि जीवनमें भगवान्‌की मुख्यता हो जाय, संसारकी मुख्यता न रहे।

पारमार्थिक उन्नति तो आपकी उन्नति है, पर सांसारिक उन्नति आपकी उन्नति नहीं है। सांसारिक पदार्थ, रुपये, मान-सत्कार आदि जितने ज्यादा होंगे, उतना ही पतन होगा। आपके भीतर जितना-जितना भगवान्‌का आदर होगा, उतना-उतना संसारका आदर अपने-आप कम हो जायगा; क्योंकि संसार 'पर' है और भगवान् 'स्वकीय' हैं। संसार पराया है और भगवान् अपने हैं। आप भगवान्‌के अंश हैं और संसार प्रकृतिका अंश है। आपके भीतर जितना संसारका आदर है, उतना ही भगवान्‌का अनादर है!

सांसारिक पदार्थोंके नाशसे हमारा नुकसान नहीं है, प्रत्युत भगवान्‌को भूलनेसे हमारा नुकसान है। रुपयोंके नुकसानसे हमारा क्या नुकसान हुआ? लाखों-करोड़ों-अरबों रुपये पासमें हों, पर आज मर जायँ तो एक कौड़ी साथ चलेगी नहीं। परन्तु भगवान्‌का किया हुआ भजन एक कौड़ी पीछे रहेगा नहीं।

जन्म लेनेपर आप क्या साथ लाये थे और मरनेपर क्या साथ ले जायँगे—इन दो बातोंपर आप स्वयं विचार करो।

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके प्रवचनोंके सार-संग्रहकी पुस्तकें

✳ 'गीताप्रेस', गोरखपुरसे प्रकाशित ✳

१. **ज्ञानके दीप जले**—प्रवचन २४.३.१९९३ से १०.४.१९९४ तक।

२. **सत्संगके फूल**—प्रवचन ११.४.१९९४ से ३०.४.१९९५ तक।

३. **सागरके मोती**—प्रवचन १.५.१९९५ से १९.३.१९९६ तक।

✳ 'गीता-प्रकाशन', गोरखपुरसे प्रकाशित ✳

४. **स्वातिकी बूँदें**—प्रवचन २०.३.१९९६ से ७.७.१९९८ तक।

५. **सीमाके भीतर असीम प्रकाश**—प्रवचन ८.७.१९९८ से २३.१२.१९९९ तक।

६. **बिन्दुमें सिन्धु**—प्रवचन ५.१.२००० से २७.५.२००० तक।

७. **नये रास्ते, नयी दिशाएँ**—प्रवचन २८.५.२००० से १२.९.२००० तक।

८. **अनन्तकी ओर**—प्रवचन १३.९.२००० से २१.४.२००१ तक।

९. **मैं नहीं, मेरा नहीं**—प्रवचन २२.४.२००१ से ७.८.२००१ तक।

१०. **बन गये आप अकेले सब कुछ**—प्रवचन ८.८.२००१ से १६.११.२००१ तक।

११. **ईस्वर अंस जीव अबिनासी**—प्रवचन १९.११.२००१ से ३०.६.२००२ तक।

१२. **पायो परम बिश्रामु**—प्रवचन ८.७.२००२ से २५.१२.२००२ तक।

१३. **परमप्रभु अपने ही महुँ पायो**—प्रवचन १.१.२००३ से १८.१२.२००३ तक।

===::0::===

गीता-प्रकाशनकी पुस्तकें पढ़ें और डाउनलोड भी करें—
website: www.gitaprakashan.com

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजकी वाणीपर आधारित

'गीता प्रकाशन' का शीघ्र कल्याणकारी साहित्य

१. **साधक-संजीवनी** (गीताकी विस्तृत हिन्दी टीका)—नौ खण्डोंमें। उत्तम कागज और छपाई।
२. **साधन-सुधा-निधि**—आठ खण्डोंमें।
३. **संजीवनी-सुधा**—'गीता साधक-संजीवनी' पर आधारित शोधपूर्ण पुस्तक।
४. **स्वातिकी बूँदें**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
५. **सीमाके भीतर असीम प्रकाश**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
६. **बिन्दुमें सिन्धु**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
७. **नये रास्ते, नयी दिशाएँ**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
८. **अनन्तकी ओर**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
९. **मैं नहीं, मेरा नहीं**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
१०. **बन गये आप अकेले सब कुछ**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
११. **ईस्वर अंस जीव अबिनासी**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
१२. **पायो परम बिश्रामु**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
१३. **परमप्रभु अपने ही महुँ पायो**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
१४. **अनुभव-वाणी**—चुने हुए अनमोल वचन। अँग्रेजी-भाषान्तरसहित।
१५. **सन्त-वाणी (प्रथम शतक)**—चुने हुए सौ अनमोल वचन।
१६. **सन्त-वाणी (द्वितीय शतक)**—चुने हुए सौ अनमोल वचन।
१७. **सहज गीता** (अँग्रेजीमें भी)—'साधक-संजीवनी' के अनुसार गीताका सरल हिन्दीमें भावार्थ।
१८. **हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं** (गुजराती व अँग्रेजीमें भी)—इस प्रार्थनाके रहस्य तथा महत्त्वका वर्णन।
१९. **कृपामयी भगवद्गीता** (गुजराती व अँग्रेजीमें भी)—गीताकी महिमा और उसकी विलक्षणताका वर्णन।
२०. **लक्ष्य अब दूर नहीं** (गुजरातीमें भी)—परमात्मप्राप्तिके विविध सुगम साधनोंका अनूठा संकलन।
२१. **सहज समाधि भली** (गुजरातीमें भी)—'चुप साधन' का विस्तृत विवेचन।
२२. **अपने प्रभुको पहचानें**—भगवान्‌के समग्ररूपका विस्तृत विवेचन।
२३. **एक सन्तकी अमूल्य शिक्षा** (क्या करें, क्या न करें)
२४. **विलक्षण सन्त, विलक्षण वाणी**—परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराजकी वसीयत-सहित।
२५. **गोरक्षा—हमारा परम कर्तव्य**—गायकी महत्ता और आवश्यकता।
२६. **रहस्यमयी वार्ता**—हस्तलिखित डायरीसे। विविध विषयोंसे सम्बन्धित मार्मिक प्रश्नोत्तर।
२७. **मेरे नाथ! मेरे प्रभो!**—भगवान्‌से अपनापन-सम्बन्धी बातोंका अनूठा संकलन।
२८. **जीवन्मुक्तिके रहस्य**—हस्तलिखित डायरीसे। जीवन्मुक्तिके सहज उपाय।
२९. **यह कलियुग है!**—कलियुगसे बचावके लिये चेतावनी।
३०. **मानस-मुक्ता**—श्रीरामचरितमानसके सकाम अनुष्ठानोंसहित।
३१. **क्या करें, क्या न करें?**—आचार-व्यवहार संबंधी शास्त्र-वचनोंका अनूठा संग्रह।
३२. **भवन-भास्कर** (परिशिष्ट-सहित)—वास्तुशास्त्रकी महत्त्वपूर्ण बातें।
३३. **सुखपूर्वक जीनेकी कला** (गुजरातीमें भी)—सर्वोपयोगी प्रश्नोत्तर।
३४. **क्या आप ईश्वरको मानते हैं?** (गुजरातीमें भी)—साधकोंके लिये चेतावनी।

गीता प्रकाशन, कार्यालय—माया बाजार, पश्चिम फाटक,

गोरखपुर—273001 (उ०प्र०) **फोन—09389593845; 07668312429**

e-mail: radhagovind10@gmail.com **website: www.gitaprakashan.com**